# श्रीभारतधर्म्म ।

## पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र

सम्पादित ।

## कलकत्ता ।

मुक्तारामबाबू ष्ट्रीट, भारतमित्र प्रेससे

पण्डित क्षमानन्द शर्म्मा द्वारा मुद्रित और

प्रकाशित ।

सम्वत् १८५७ ।

मूल्य ॥) आना ।

# श्रीभारतधर्म्म ।

## जन्मान्तर ।

पिछले कर्मोंका फल भोगने और नये जन्मोंमें नये कर्म सञ्चय करनेके लिये हमारा जन्मान्तर होता है यही हिन्दुओंका मूल विश्वास है। अन्यान्य जिन बातों पर हम विश्वास करते हैं उस की जड भी यही मूल विश्वास है। यदि इस मूल विश्वास को हम न जानें अथवा भूलजाय तो और सब बातें गडबड हो जाती हैं। दर्शन, स्मृति, इतिहास पुराण—यहां तक कि काव्य नाटक तक में भी यही मूल बात पाई जाती है। जिन को इस मूल तत्त्व पर विश्वास है वह हिन्दु-शास्त्र की किसी बात पर भी अविश्वास नहीं कर सकते।

समय के फेर और शिक्षा के दोष से इस मूल तत्त्व को बहुत लोग नहीं जानते हैं। कुछ लोग बिना जाने बूझे ही इसे नहीं मानते। परन्तु इसके अच्छे अच्छे प्रमाण हैं तिस पर भी जो लोग उन प्रमाणों को न मानें उनके लिये युक्ति है।

जन्मान्तर धारण करने से दो बातें समझी जाती हैं। एक यह कि हम शरीर के धारण करने से पहले भी हम थे और दूसरी यह कि यह शरीर न रहने पर भी हम रहेंगे।

नास्तिक समझते हैं कि यही जन्म हमारा पहिला जन्म है। इसके शेष होते ही हम भी शेष हो जायगें। शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्धका अनुभव करते हैं वही हम हैं,—वाक पाणि, पाद पायु उपस्थ द्वारा नाना कर्म करते हैं वही हम हैं,—स्मरण मननादि

करते हैं वही हम हैं—भक्ति प्रेम स्नेह करते हैं वही हम हैं—राग द्वेष हिंसा करते हैं वही हम हैं—सुख दुःख भोग सकते हैं वही हम हैं—संशय निश्चय करते हैं वही हम हैं—इच्छा अनिच्छा करते हैं वही हम हैं। अस्थि, मेद, मांस आदि के एक प्रकार मिल जाने से हम उत्पन्न हुए हैं। हम हम शरीर के एक गुण या क्रिया मात्र हैं। शरीर का नाश होते ही हमारा भी नाश है। जैसे शून्य थे वैसे ही हो जायंगे।

परन्तु जड़से चेतन की उत्पत्ति हो सकती है ऐसा हमने कभी न देखा। हमने क्या किसी ने भी न देखा होगा कि जड़ वस्तुओं के एकत्र होनेसे चैतन्य का उदय होता हो। जड़ और चेतन सम्पूर्ण रूप से भिन्नधर्म्मी हैं। जड़का जो धर्म्म है वह चेतनका नहीं है और चेतनका जो धर्म्म है वह जड़ का नहीं है। बारूद और आग के मिलने से एक शब्द होता है,—घड़ी में कूक देनेसे एक प्रकारकी क्रिया उत्पन्न होती है,—चार और अम्लके मिलने से बुलबुला उठता है परन्तु सर्वत्र देखियेगा कि जहां वह शब्द, वह क्रिया, वह बुलबुला उत्पन्न होगा वहां वह एक ही प्रकार का होगा। मात्रा का तारतम्य होगा परन्तु जातीय भाव में कुछ भी भेद न होगा। जड़ पदार्थों के मिलनेसे जो क्रिया गुण या नया कर्म्म उत्पन्न होता है उस में स्वाधीनता कुछ नहीं है, इच्छा अनिच्छा कर्तृत्व कुछ नहीं है। मिले हुए जड़ पदार्थ बोल नहीं सकते सोच नहीं सकते, न यह कह सकते हैं कि हम अमुक नियम पर चलेंगे। हम जड़ पदार्थों के भीतर नहीं हैं। जीव के जैसे मन है मिले हुए जड़ पदार्थों के वैसे कोई मन नहीं है यही जड और चेतन का भेद है।

जीवों के शरीर का मेल एक एक जाति में एक ही प्रकार का है परन्तु मन सर्वत्र भिन्न भिन्न है। एक बकरी के कई एक बच्चों की आकृति, लोम, रङ्ग, ढङ्ग सब में एकता होगी परन्तु जब बकरी

जुगाली करती है तो उस समय एक बछा कूदता है, एक सोता है और एक माता का थन चाटता है। चारों के चार प्रकार के मन हुए। उन के शरीरों का मेल एक ही प्रकार का है परन्तु मनकी गति नाना प्रकार की। इसी से जान पड़ता है कि जड़त्व और चैतन्य स्वतन्त्र पदार्थ हैं। यदि जड़ों के मिलनेसे चैतन्य होता तो क्रिया भी सर्वत्र एक होती। जड़ वस्तुओं का तत्त्व जानने से हम अपनी इच्छा के अनुसार कितने ही काम कर सकते हैं। हम जानते हैं कि अमुक अमुक जड़ पदार्थों के मिलने से अमुक काम होगा। यदि जड़ के भी मन होता अथवा जड़ वस्तुओं के मिलने से मन उत्पन्न हो सकता तो हमारे विज्ञान वाले बाबुओं की विज्ञता कुछभी न रहती। लोग रेल में चढ़ चुके हैं, घंटी बज चुकी है ड्राइवर ने कल का कान मरोड़ दिया है परन्तु कल का मन अचक चढ़ा हुआ वह सामने नहीं चलना चाहती है। कभी पीछे को भागती है कभी दाएं बाएं चलने को बल मारती है यदि ऐसा हो सकता तो ड्राइवर साहब की बड़ी मट्टी खराब होती और उनका कप्तानपन भी कुछ नहीं रहता। कलको कितना ही समझाना होता भय दिखाना होता, जेल में भिजवाने की धमकी देना होती। कोई कल सुशील होती और कोई उद्दत।

और एक बात देखिये जड़ वस्तुओं के समूह से जो काम होता है वह दूसरे की इच्छा पूर्ण करता है। ज्ञान क्रिया और इच्छा इन तीन में से ज्ञान शक्ति जड़ को नहीं है। क्रिया शक्ति जो कुछ है वह पराये हाथ है। और इच्छा शक्ति तो उस में निश्चय ही नहीं है। जड़ चीजों के पिण्ड का चलाने वाला दूसरा होता है। वह अपनेको आप नहीं चला सकता। परन्तु चैतन्य पिण्ड अपने को आप चलाता है या चलाने की चेष्टा करता है क्योंकि उस में मन और इच्छा है। कभी कभी ऐसा होता है कि शरीर पिण्ड के भीतर रहकर चित्त खिन्न हो जाता है कि क्यों इसमें हम पड़े

हुए हैं। कहीं नाच कूद होता है तो जी चाहता है कि हम देखें परन्तु पैर में चोट लग जाने से देख नहीं सकते हैं। जी में बड़ा ही कष्ट होता है। यदि जड़ वस्तुओंके समूह का फल ही हम होते तो हमें कुछ भी कष्ट न होता। यदि जड़ चीजों के मेल से ही हमारी उत्पत्ति होती तो हमारा शरीर जो कुछ चाहता है उस के विपरीत हम क्यों चाहते? इसी से समझा जाता है कि हम जो कुछ हैं हमारा शरीर वह नहीं है। हम और हमारा शरीर एक नहीं है। जड़ और चेतन एक नहीं है यह सहज और स्पष्ट बात है। परन्तु समय ऐसा आया है कि ऐसी छोटी बात भी समझाना पड़ती है।

जब जड़ चेतन एक नहीं हैं तो यह कैसे होसकता है कि हम पहले कभी नहीं थे और हमारे शरीर के जड़ पदार्थों के एकत्र होने से हम हो गये। यहां दो बातोंका ध्यान रखना चाहिये। एक तो यह कि कुछ न था अथच कुछ हो गया ऐसा कभी देखा नहीं जाता। हम ने कभी किसी वस्तु का आदि और अन्त नहीं देखा। हम केवल वस्तुओं का रूपान्तर देखते हैं। जिसे हम आदि या अन्त कहते हैं वह हमारे मनकी कल्पना मात्र है। दूसरी बात यह है कि धर्म्मी का अन्त होने से धर्म्म का अन्त हो जाता है, गुणाधार का अन्त होने से गुण का अन्त हो जाता है परन्तु एक धर्म्मी का अन्त होने से अन्य धर्म्मी का अन्त नहीं होता।

अब इन दो बातों ही को समझना चाहिये। देखा गया कि हम और हमारा शरीर भिन्न धर्म्माक्रान्त भिन्न जातीय पदार्थ हैं। जड़ पदार्थों के समूह के फलसे हम उत्पन्न नहीं हुए अथच हम हैं हम अब हैं और पहले कुछ नहीं थे यह किसी प्रकार नहीं हो सकता। जो कुछ वर्त्तमान है उसको कुछ न कुछ पूर्व अवस्था रहती है। इससे हम नहीं थे और अचानक हो गये यह कल्पना

कैसे हो आ सकती है ? हम अपने शरीर के बनजाने का फल है ऐसा कहने से यही समझा जाता है कि पहले शरीर बना और पीछे हम। परन्तु इस के लिये कोई प्रमाण नहीं है। देखा जाता है कि पहले चेतन होता है और पीछे जड वस्तुओं का समूह। घर बनाने के लिये पहले घर का चित्र मन में बनाना पडता है, पीछे घर के लिये जिन जड पदार्थों की आवश्यकता होती है वह एकत्र किये जाते हैं सो घर बनाने के लिये उस की जड सामग्री एकत्र करने वाला एक चेतन दरकार होता है। इसी प्रकार हमारे इस जड़ शरीर के सब उपादानों के एकत्र होने से पहले चेतन की कल्पना करना होती है। शरीर से सुख और दुःख का भोग होता है। शरीर धारण से पहले उस सुख दुःख का भोगी अवश्य ही कोई था और वही भोगी हम हैं। इस से जाना जाता है कि शरीर के पीछे हम नहीं हुए हमारे पीछे हो शरीर हुआ। हम चेतन पदार्थ अकस्मात हो गये हैं यह भी नहीं हो सकता। हम से पहले कुछ नहीं हो सकता हम ही पहले थे। सोनेके कडे देखते हो। कड़ों के बनने से सोने की उत्पत्ति नहीं हुई। सोना अन्य रूप से पहले भी था। वह रूप चाहे जो हो, कोई और गहना हो, सोनेकी शलाका हो अथवा परमाणु ही हो या जिन जिन उपदानों से सोना बनता है वही हो किसी न किसी रूप से सोना निश्चय था। सोना जड पदार्थ है। जड़ धर्मी का रूपान्तर के सिवाय आदि कभी नहीं देखा। हम चेतन धर्मी हैं हमारा भी चेतनमय कोई न कोई रूप आगे था। हम थे ही नहीं और अचानक हो गये यह नहीं हो सकता। और जब शरीर और हम भिन्न भिन्न वस्तु हैं तब दोनों का क्षय उदय एक साथ होगा यह भी कुछ बात नहीं है। घर नष्ट होने के साथ ही घर वाला नष्ट नहीं हो जाता। काठ में लोहे की कील ठुकी रहे और काठ जल जाय तो लोहे की कील उसके साथ नहीं जल जायगी। क्योंकि

दोनों ठीक एक धर्म्मी नहीं हैं। लोहे काठ के एक साथ रहने से भी आग का प्रभाव दोनों पर बराबर नहीं होता अथच दोनों जड़ हैं। ऐसी अवस्था में शरीर के क्षय उदय के साथ हमारा भी क्षय उदय होगा यह कैसे कह सकते हैं?

अब जाना गया कि जड़ चेतन एक नहीं हैं हमारा शरीर और हम एक धर्म्मी नहीं हैं—एक के क्षय से दूसरे का क्षय और एकके उदय से दूसरे का उदय नहीं हो सकता। अब इस भिन्नता को स्मरण रखकर देखना चाहिये कि जन्मान्तर स्वीकार न करके और किसी प्रकार हमारा जीवत्व समझा जा सकता है या नहीं।

भले बुरे का विचार सब करते हैं। भला क्या है और बुरा क्या है इस में मत भेद भी होता है। परन्तु कोई कुछ भला और कोई कुछ बुरा है इतना भेद सब मानते हैं। जिस से अभीष्ट सिद्ध होता है वह भला है और जिस से उद्देश्य में बाधा पड़ती है वह बुरा है यही सब मानते हैं। मत भेद इस लिये होता है कि सब के उद्देश्य पृथक् पृथक् होते हैं। इस के अतिरिक्त दुःख वर्जन और सुख लाभ सब का उद्देश्य है। इस से जिस में सुख है वही भला और जिस में दुःख है वही बुरा। परन्तु किस प्रकार सुख होगा यह विषय लेकर ही मत भेद होता है। सारांश यह कि कार्य्य प्रणाली में मत भेद होता है भले बुरेके लक्षण में कुछ भेद नहीं होता।

इस भले बुरे के भेद करने में हमारे दो अभिप्राय हैं। एक तो सुख और दुःखका भेद रखना और दूसरे भावी कर्म्मके फला फल का अनुमान करना। कौन कर्म्म करने से सुख होता है और कौन कर्म्म करने से दुःख होता है यह बात स्थिर करके ही हम किसी कार्य्य की प्रवृत्ति वा निवृत्ति की चेष्टा करते हैं। हम को यह विचार हो जाता है कि अपने बुरे या भले कर्म्मों का फल हमें भोगना होगा। इसी मूल सूत्र के अवलम्बनसे समाज नीति बनी

और शिल्प विज्ञान आदि की उत्कर्ष चेष्टा भी इसी सूत्र को अव लम्बन करके की जाती है। और यही कारण है कि प्रत्यक्ष क्रिया को देख कर लोगों की बड़ी आस्था होती है परन्तु तिस पर भी सब भले बुरे कर्मों का फल हम इस जन्म में नहीं पाते हैं। यदि मरने के पीछे हम न रहें और अन्य किसी अवस्था में हम अपने किये कर्मों का फल भोग न कर सकें तो भले बुरेके विचारसे कुछ लाभ हो नहीं। संसार में बहुत लोग भले काम करके भी जीवन भर दुःख भोगते हैं। इस जन्म के भले बुरे कामों को इस जन्मके सुख दुःख से बहुत काम सम्बन्ध देखा जाता है। सुख की चेष्टा सभी करते हैं तथापि दुःख भी पाते हैं पाठ पूजा ज्ञान ध्यान करने वालों पर भी कभी कभी बिजली गिरती है उन्हें साप काट खाता है। वह चोर से पीड़ित होते हैं, रोग भोगते हैं। इस से यही समझा जायगा कि या तो धर्म कर्म सब पोंछो है या यह कि मरने के पीछे और किसी अवस्था में किये कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। यदि जन्मान्तर मान लिया जाय तो भले बुरे के विचार में सार्थकता है। न माना जाय और इस देह के विनाश के साथ अपना विनाश भी स्वीकार कर लिया जाय तो पाप के धर्म, नीति और शिक्षा को कोई क्यों मानेगा? मानने से फल ही क्या होगा? धर्म में नीति में शिक्षा में काम क्रोध लोभ आदि के रोकने की शिक्षा है। परन्तु इनके रोकने में उसी समय असुख जान पड़ता है। काम आदि मनुष्य को बहुत प्यारे लगते हैं। मनुष्य यही चाहता है कि इन सब को करके आनन्द लूटू परन्तु यदि जन्मान्तर न हो तो कोई उन को यह कैसे समझावेगा कि इन सब पापों का फल तुम को भोगना होगा। संसार में ऐसे बहुत लोग हैं जो सबकी आंखों में धूल डालकर मन मानी मौज उड़ाते हैं और कभी कभी उन लोगों को जीते जी कुछ भी कष्ट नहीं होता। यदि जन्मान्तर न माना जाय तो दूसरे लोगों को भी इसी प्रकार कुपथ में चलने

का साहस क्यों न होगा ! इसी से हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि किये का फल अवश्य भोगना होगा चाहे वह इसी शरीरमें भोगना हो अथवा जन्मान्तर में।

जन्मान्तर न मानने से केवल किये कर्म्म के फल के नाश होने की आशङ्का ही नहीं है वरंच बिना किये कर्म्मों के भोग भोगने का भी भय है। जैसे हमने कोई अच्छा काम नहीं किया है तथापि हमारे पास धन जन यौवन सुख सब कुछ है। बुरा काम हमने कभी नहीं किया है तथापि हम अन्धे काने लंगड़े लूले और कंगाल हैं। कोई कोई जन्मते राजा के घर पलता है राज भोग भोगता है और कोई भूखे कंगाल के घर जन्म लेता है। यह सब क्यों ? यदि कहा जाय कि अकस्मात ऐसा हो जाता है तो कहना पड़ेगा कि तुम में विज्ञान बुद्धि नहीं है। क्या बिना कारण भी कार्य्य होता है ? जन्म लेने के दिन से मरने तक यदि कष्ट ही भोगता रहे और उस कष्ट का कोई कारण नहीं है तो मनुष्य क्या कहकर अपने मन को सन्तोष दे सकता है ? बुरा काम किये बिना हम कष्ट पारहे हैं ऐसा बिचार जी में उठनाही बड़ा भयङ्कर है। परन्तु यदि मनुष्य के जीमें यह विचार आ जाय कि मैं पिछले कर्मों का फल भोग रहा हूं तो उसे कुछ शान्ति मिलती है।

जो लोग ईश्वर को सृष्टि कर्त्ता मानते हैं उन को जन्मान्तर भी मानना पड़ता है। क्योंकि ईश्वर किसी को अधिक सुख दे और किसी को दुःख की चक्की में पीस डाले तो इस में ईश्वर की ईश्वरता में बड़ी विषमता आती है। हम को अच्छे काम का फल न मिलेगा और बुरे कामका दण्ड न मिलेगा तो हमारे संसार में भेजने से ईश्वर का प्रयोजन ही क्या ? यदि यह कहा जाय कि ईश्वर की बात ईश्वर ही जाने वह जो चाहे कर सकता है तब भी खिलवाड़ होती है। ऐसा होने से कोई भला काम क्यों करेगा ?

बुरा काम क्यों छोड़ेगा ? हिन्दू यही मानते हैं कि ईश्वर हमारे कर्मों के अनुसार हमको फल देता है। पिछले जन्मों के कर्म फल से ही हम को सुख दुःख मिलता है। इस जन्म में हम जो सुख भोग करते हैं अथवा दुःख उठाते हैं वह सब पिछले जन्मों के कर्मों का बदला है। यही युक्ति सिद्ध है। जो इसके विपरीत है वह युक्ति के विरुद्ध है।

---

# जीव और जीवात्मा ।

जगत में साधारण रूपसे तीन प्रकार के पदार्थ मिलते हैं चेतन अचेतन और उद्भिद। इनमें ऐसी कोई वस्तु नहीं देखी जाती जिस में कुछ गुण न हो। सामान्य से सामान्य पदार्थ में भी कभी कभी अद्भुत गुण निकल पड़ता है।

परमाणुओं से पदार्थ बनता है। पदार्थ टूट फूट जाने से भी उस के परमाणु नष्ट नहीं होते। परमाणुओं में जो शक्ति वा गुण है वह सदा उन में वैसे ही बने रहते हैं। मिश्री की चाशनी से मिश्री बनती है—नमक को जलमें घोलने से घुल जाता है। नमक में जो जल के परमाणु हैं उन्हें अपनी ओर खेंच लेते हैं। इस प्रकार एक प्रकार के परमाणु आपस में मिल जाते हैं। परन्तु उनमें अलग होने की शक्ति भी है। एक दूसरी वस्तु डालने से वह भिन्न भी हो सकते हैं। पानी में घुले हुए नमक को आग पर चढ़ा देने से जल भिन्न हो जाता है और फिर नमक के परमाणु सब अलग हो जाते हैं। इसी प्रकार की शक्ति या गुण परमाणुओं में है जिस से नाना प्रकार वस्तु बनती बिगड़ती रहती हैं। हमारा काम यह है तनु नहीं

समझ सकते हैं। मनुष्य जितनाही प्रकृति के तत्त्व में मन लगाता है उतनाही ज्ञानवान होता जाता है। प्रकृति का कार्य्य कारण भाव देखकर ही मनुष्य को ज्ञान वृद्धि होती है।

प्रकृति अपना निज भाव कभी नहीं छोड़ती। आगमें जलाने और उजाला करने की शक्ति है यह शक्ति आग को कभी नहीं छोड़ सकती। इसी प्रकार जलमें शीतल करने का गुण है। उस गुण के कारण ही जल जल समझा जाता है। पंचभौतिक पदार्थों में इसी प्रकार अलग अलग गुण हैं और उनसे वह पहचाने जाते हैं। यद्यपि उनके गुण अलग अलग हैं तथापि उन के मिलने से नई बात भी देखी जाती है। हल्दी पीली है और चूना श्वेत। पर दोनों के मिलने से लाल रङ्ग उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जिस में जो स्वाभाविक गुण है वह कभी कभी भिन्न धर्म्माक्रान्त पदार्थ से मिलकर एक स्वतंत्र शक्ति या गुण प्रकाश करता है। ऐसे गुण को यौगिक वा मिश्र गुण कहा जाता है। पृथिवी पर यौगिक पदार्थ ही अधिक देखे जाते हैं। इसी से किसी पदार्थ में जिन जिन जाति के मूल परमाणुओं की समष्टि होती है उसमें वह गुण या धर्म्म भी मिलते हैं। हमारे शरीर में रस और रक्ततरल पदार्थ हैं। इसीसे हम पहचानते हैं कि हमारे शरीरमें जल है। सांस के आने जाने से वायु की चलाचल लगी रहती है इसीसे हम जानते हैं कि हमारे शरीर में वायु है। शरीर में उष्णता और विकाश गुण है इसी से अग्नि की अवस्थिति भी इसमें जानी जाती है। शरीर में शून्य स्थान है यह जान कर हमें आकाश का परिचय मिलता है तथा हाड़ मांस नाड़ी और मज्जा रक्त आदि नाना प्रकार के पार्थिव पदार्थ शरीर में हैं इसी से शरीर में पृथिवी का होना स्पष्ट होता है। इस पंचभौतिक पदार्थ की समष्टि को नर-देह कहते हैं और इस नरदेह ही में जीवात्मा का वास स्थान है। उस का रचना-कौशल ऐसा सुन्दर है कि परीक्षा करके देखो तो

जानोगे कि ज्ञानमय ईश्वर के अनन्त ज्ञान का विकाश और अनन्त मंगल का भाव उसमें कैसा विराजता है। उस के सृष्टि-कौशल में यदि ज्ञान और मंगल और मंगल भाव के प्रकाश करने की क्षमता न रहती तो इस अनित्य जड देह में रहने के समय जीव की ज्ञान-बुद्धि कभी स्फूर्त्ति नहीं पाती। अब देखना चाहिये कि इस नरदेह में जो ज्ञानमय मङ्गलमय भगवान के नियमों की सृष्टि हुई है इसी को जीव और उस को आत्मा कहा जा सकता है या इस देह को छोडकर जीव और आत्मा स्वतन्त्र पदार्थ है? इस विषय में किसी किसी के मन का भाव इस प्रकार है कि जब प्रकृति से जीव की देह बनती है तब इस देह के क्रिया गतभाव भी प्रकृति के अनुकूल ही होते हैं। जीव और प्रकृति का भाव एक ही सा होता है। जीव को जो कुछ ज्ञान होता है वह देह के लय सिद्ध भाव से उत्पन्न होता है। प्रकृति से भिन्न शरीर में जीव और जीवात्मा कुछ नहीं है। इस मूल तत्त्व के विषयों को स्थिर करने के लिये प्रकृति और पुरुष की आलोचना करना आवश्यक है। जिस का नाम प्रकृति है वही जड है और जो पुरुष है वही ज्ञान और चैतन्यमय ईश्वर है। ज्ञानमय ईश्वर की इच्छा से प्रकृति उत्पन्न हुई और उस में जो कुछ गुण है वह भी ईश्वर के दिये हुए हैं। प्रकृति और पुरुष को लेकर ही जब इस विश्व संसार की उत्पत्ति है तो उस के मूलमें उसी ज्ञानमय ईश्वर की असीम क्षमता सब को स्वीकार करना होगी। विश्व संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसमें विश्व पिता का आविर्भाव न हो तिस पर इन सब पदार्थों के रचने वाले को कोई पहचान कर पकड़ भी नहीं सकता। इस से स्पष्ट है कि सृष्ट वस्तुओं से सृष्टि कर्त्ता की क्षमता बहुत असीम है और उस का एक स्वतन्त्र भाव है। हां इतना मान लेना होगा ज्ञानमय पुरुषने प्रकृति के भीतर जो गुण रख दिये हैं वह सदा वैसे ही रहेंगे। अर्थात् प्रकृति का

आदि में जो भाव था अनन्तकाल तक वही रहेगा उस के गुण का कुछ परिवर्त्तन न होगा।

अब देखना चाहिये—पृथिवी के आदि काल में मनुष्य तथा अन्यान्य जीव जन्तुओं के शरीरों में जो सब परमाणु थे वही अब तक भी हैं और उनमें जब जैसे गुण थे अब भी वैसे ही हैं। जब प्रकृति का यही स्वभाव सिद्ध भाव है और उसमें किसी प्रकार की उलट पलट नहीं है तो क्योंकर कहा जा सकता है कि उसमें ज्ञान का भाव भी है? ज्ञान प्रकृति के स्वयं सिद्ध भावसे उत्पन्न होने वाला नहीं है। यदि ज्ञान प्रकृति से स्वयं सिद्ध भाव उत्पन्न होता तो जड़ पदार्थों में भी उसका विकाश होता। जड़ शरीर में जीव के रहने से ही उसे ज्ञान होता है। जब तक जड़ देह में जीव का बासा है तब तक उसे ज्ञान है। जीव के अलग होते ही शरीर फिर जड़ का जड़ ही हो जाता है। जड़ सदा जड़ ही रहता है और चैतन भी सदा ज्ञानमय ही बना रहता है।

साधन कार्य्यमें लिप्त होनेसे मनुष्यको अन्तरेन्द्रियोंके परिचालन में रत होना पडता है। इन अन्तरेन्द्रियों के चलाने की शक्ति जितनी बढ़ती जाती है उतना ही मनुष्य अपनी भीतरी अभूत पूर्व्व ज्योति का दर्शन करता है। पीछे इसी ज्योति में परमात्मा मिलता है। इसी से श्रुति भगवती कहती है "हिरन्मये परे कोषेविरजं ब्रह्मनिष्कलम्"। ज्ञानमय चैतन्य स्वरूप ईश्वर के अंश का नाम ही जीवात्मा है। यही जीवात्मा उज्ज्वल श्रेष्ठ कोष अर्थात् परमात्मा का हृदय रूप सिंहासन है। मलिन दर्प्पण में जिस प्रकार मुख नहीं दिखाई देता, मलिन हृदय में भी उसी प्रकार परमात्मा का दर्शन नहीं होता। विशुद्ध ज्ञानसे अन्तर सुमार्ज्जित होने से पहले उस में आत्मा का आदि भाव प्रकाशित होता है; पीछे उस में अनन्तर ज्योतिर ज्योतिः परमात्मा का दर्शन मिलता है, अर्थात् पूर्ण ब्रह्म का आविर्भाव दिखाई देता है। परमात्मा

का नाम जिस प्रकार ज्योति स्वरूप है उसी प्रकार वह असीम ज्ञान का भाण्डार भी कहलाता हुआ ज्ञानमय कहलाता है। उसी ज्ञान का अंश जब हमारा जीवात्मा है तब हमारे शरीर मे रहते हुए उस का ज्ञानभाव क्यों न प्रकाश होगा? सजीव शरीर ही आत्मा का वास स्थान है। जीव देह को आश्रय करने से उस का चैतन्य लोप नहीं हो सकता।

जीवात्मा पद्म पत्र स्थित जल विन्दु की भांति जीव के भीतर रहता है। वह क्रिया रहित है, केवल जीवकी क्रिया का साक्षी है। ऐसी दशा में चाहे उसे लिप्त कहो चाहे निर्लिप्त। जीव जड शरीरमें रहकर ज्ञानके काम करता है इससे बहुत लोगोंकी धारणा है कि शरीरका क्रियाफल ही जीव और जीवात्मा है और उसीसे स्वयंसिद्ध भावसे ज्ञान की उत्पत्ति होती है। परन्तु ऐसा विचारनेसे प्रकृति और पुरुषका भेद ठीक नहीं रहता। प्रकृति और पुरुषको एक कहना होगा। क्योंकि ऐसा कहे विना प्रकृतिमें स्वयंसिद्ध भावसे ज्ञान का मानना तो कठिन होगा। जिस अखिल ब्रह्माण्डका प्रत्येक विषय अनन्त ज्ञानका परिचय देकर विधाताके असीम मङ्गलभावकी घोषणा करता है यदि वह सब प्रकृतिही का खेल हो तो नास्तिकों के मतमें और इसमें क्या बडा भेद रहा?

इस विषयमें और एक बात है कि मनुष्य और दूसरे दूसरे जीवोंके शरीरमें पृथिवीके आदिमें जो परमाणु समूह था, अबभी वही है। तथा आदि में इन परमाणुओंमें जो गुण था वही अब भी है। सो यदि प्रकृतिमें स्वयंसिद्ध भाव से विचार करनेकी शक्ति रहती तो जीवोंकी उत्पत्तिमें क्या कुछ भी उलट पलट न होती? प्रकृतिमें ज्ञानका अभाव है इसीसे तो ज्ञान विशिष्ट जीवों को उत्पन्न नहीं करसकती। प्रकृतिमें अन्ध शक्ति रहने से ही अन्ध शक्ति विशिष्ट पदार्थों के उत्पादन की शक्ति उसमें है। नह

नदी पहाड़ पहाड़ी, वृक्ष लता आदि की उत्पत्ति एवम् वर्षा, आंधी, शीत ग्रीष्म आदिके कालों की ओर देखना चाहिये। इन सबों प्रकृतिकी जड़ताका परिचय मिलता है। यदि प्रकृतिमें शक्ति होती तो बन्दरसे मनुष्य बना देती और पहाडोंसे गाय भैंस। भरनोंमेंसे गेहूं के पेड़ पैदा करदेती और बालूमें से आलू निकाल देती। पुरुषने अपनी जो इच्छा इस प्रकृति रूपिणी नारीमें भर दी है उसीका विकाश वह करती है।

शरीर जीव और जीवात्मा का घर है। घर जड़ होताही है। परन्तु जीवात्मा का यह घर चलता फिरता होनेसे कुछ चैतन्यसा प्रतीत होता है। इसीसे लोग इसे चैतन्य मान बैठते हैं। जो हो ईंट चूने के घर और शरीर रूपी चलते फिरते घरका भी जरा मिलान करके देखना चाहिये। मनुष्य के रहनेका घर भी अपनी स्वच्छता, सुन्दरता, खिड़की अलमारी, नानाविधि की वस्तुओं, पाकशाला आदि तथा मनुष्यों के गमनागमन, बात चीत, हंसी ठट्ठे, गाने बजाने, हंसने खेलने आदिसे एक प्रकार अपनी सजीवता दिखलाता है। खिड़की खोलकर मानो वह देखता है और बालकोंका कोलाहल मानो उसकी हंसी है। इसी प्रकार समझ लो। परन्तु वास्तवमें घर जड़ है। उसने अपनी खिड़की आप नहीं खोली तथा उसमें जो हंसता है वह भी दूसराही है। यही दशा शरीररूपी घरकी है। इसका भी चलना फिरना उठना बैठना दूसरेही के अधीन है।

प्रकृति में ज्ञान नहीं इसीसे उसका नाम जड़ हुआ है। केवल कुछ गुण उसमें हैं। परन्तु उन गुणोंमें ज्ञान शक्ति न होनेसे उनका नाम पृथिवी की अन्धशक्ति पड़ा है। इस अन्धशक्तिसे ज्ञानका काम बहुत अलग है। प्रकृतिका गुण जाननेसे हम उसके द्वारा अपने नानाप्रकार के काम निकाल लेते हैं। आगकी शक्ति जान कर हमने उससे पकाने कलचलाने आदि का काम

लिया। पानीकी शक्ति जानकर उसकी भाप बनाडाली बरफ बनाडाली। उससे माली धोबीका और पनचक्की चलवा कर पिसनहारे तक का काम लिया। प्रकृति को यदि ज्ञान रहता तो हमारे हाथमें पड कर वह अपने गुणमें उलट पलट कर देती। ठीक उसी गुण पर चल कर हमारी इच्छा पूर्ण न करती।

प्रकृति पराधीन है। ज्ञानमयकी इच्छाशक्ति उसे नचाती है। इसी विश्वासपर हम प्रकृतिको लेकर अपनी मनमानी कारवाई कर लेते हैं। हा यह ठीक है कि हम प्रकृतिका ठीक गुण न समझ कर यदि उससे कुछ काम लेते है तो वह गडबड होता है। ईश्वरने प्रकृतिमें जो गुण रक्खे हैं मनुष्य का कर्त्तव्य है कि पहले उनकी जाच पडताल ठीक करले। नही तो हमारे इच्छित काम में बाधा पडेगी। हमारे शरीरमें बैठा ज्ञानमय पुरुष प्रकृति की खोज खबर लेता है। उस ज्ञानमयके कार्य्य और प्रकृतिके गुणोंमें भेद है। इसी से जानलो कि जड शरीर से भी वह अलग है। जड शरीर में ज्ञानमय की सत्ता है अर्थात् जीव रहता है इसीसे वह ज्ञान प्रकाश करता है।

प्रकृति और ज्ञान अलग अलग वस्तु हैं। प्रकृतिमें ज्ञान का अभाव है इसी से वह ज्ञान ग्रहण नही कर सकती। ज्ञान का अस्तित्व अलग है। जहा ज्ञान हैं वहा परिचालन की वृद्धि है, जहा परिचालन नहीं है वहा स्फूर्त्ति भी नही है। अज्ञान यदि ज्ञान की क्रिया देख कर मनके अंधेरे को हटाने की चेष्टा कर सके तो उसका ज्ञान धीरे धीरे बढ सकता है। परन्तु यहा यह समझा देना जरूरी है कि ज्ञान उसीका बढता है जिससे कुछ न कुछ ज्ञान मौजूद है। जिसमें एकादम ज्ञान नही है उसे ज्ञान की शिक्षा नही होसकती। वशी बजती है उसकी सुरीली लय चारो ओर व्याप्त हो रही है,—आप देखेंगे कि कोई ताल देता है, कोई सिर हिला कर लय देता है और कोई उसके मधुर स्वर पर

गोहिल हो कर आंखें बन्द कर लेता है ; परन्तु बंशी जैसी अचेतन थी वैसीही अब भी है। उस बंशीको ले कर तुम दिन रात गाओ बजाओ। वह बजेगी, उसमें से गीत निकलेगा. परन्तु कभी एक गीत भी वह आप से आप न गावेगी। इससे स्पष्ट है कि बंशी में जो गाने का गुण है वह तुम्हारे बजाने का गुण है। उसका अपना गुण नहीं है। वह एक ज्ञान विशिष्ट जिन्होंने बनाके रख दी है। इसी प्रकार जगतमें जो जड़ धर्म्मी वस्तु हैं उनका अचेतन भाव भी सर्वत्र दिखाई देता है।

इसका एक और उदाहरण लीजिये। बीजसे पौधा निकलता है। मट्टी जल वायु और तेज इत्यादि की सहायता से वह बढ़ता है। वह पौधा अपनी जड़ से मट्टी का रस चूसता है, टहनियों और पत्तों से वायु और तेजको ग्रहण करता है। इसी नियमसे, वह बढ़ता है, समय पर उसमें फूल खिलते हैं और अन्तको फिर उसमें बीज पड़ जाते हैं। वृक्ष आदिका यही स्वाभाविक कार्य्य कारण-भाव लेकर आलोचना करो। देखोगे कि विश्वराज्यका असीम सृष्टि-कौशल उनके भीतर कैसे विराज रहा है, अथच इन सब क्रियागत कामोंमें ज्ञानका अस्तित्व कुछ भी नहीं देखा जाता। रासायनिक क्रिया वा प्रकृतिके गुण, जड़ वस्तुओंके निजके स्वधर्म—यह सब जड़ को कभी परित्याग नहीं करते हैं। इनमें ज्ञान नहीं है। ज्ञान न होनेसेही उद्भिद वस्तुओंकी गति भिन्न भाव की है ; केवल पांच भौतिक द्रव्यादि के संयोगसे उनका बढ़ना और फूल फलका लगना देख कर यदि कोई उनको, जीव जन्तु के साथ तुलना करे तो वह ठीक नहीं है। क्योंकि प्रकृतिके कईएक गुणोंके अवलम्बनके सिवाय उनमें और कुछ नहीं मिलता है। जिस प्रकार मनुष्य बढ़ता है और बीजसे वृक्ष उत्पन्न होकर बढ़ता है इससें पृथिवी जल वायु तेज आकाश का जो कुछ मेल है वही है अधिक कुछ नहीं है। मनुष्य शरीर की भांति वृक्ष-शरीरमें ज्ञान

का भाव कुछ नहीं है। इच्छा अनिच्छा प्रकाश करने की शक्ति उनमें कुछ नहीं है। मनुष्यके शरीर पर भी यद्यपि प्रकृतिका प्रभाव होता है और उससे वह बढ कर अन्तको क्षय होता है परन्तु मनुष्यका शरीर प्रकृति के प्रभाव को हटा कर उसके विरुद्ध चलनेकी चेष्टा भी किया करता है। जब प्रकृतिके कामोंसे उसके शरीरमें कुछ असुख होता है तो वह उसे निवारण करने की औषधि खा कर उसे दूर करता है। निकृष्ट प्रवृत्ति की उत्तेजना को मनुष्य पुण्य कार्य्य करके धीमा करता है। सतोगुणी भोजन करके अपने को संयमी बनाता है। योग सीख कर वह अपने हृदयके नेत्र खोल लेता है और अन्तमें मोक्षमार्गका अनुगामी होता है। यह सब निगूढ तत्त्व जान कर भी जो लोग अपने अपने शरीरमें जीव और जीवात्मा की अवस्थितिका अनुभव न करके जड प्रकृतिमें भी ज्ञानकी सत्ता मान लेते हैं वह लोग धर्म्म का मूल तत्त्व जाननेमें बहुत बाधा पाते हैं।

जीव देह एक प्रकारका यन्त्र विशेष है। जब तक यह यन्त्र बिगडता नहीं है जीव इसमें रहता है। जब यह यन्त्र बिगड जाता है जीव इसको छोड देता है। इस विषय में एक तर्क उठ सकता है कि जब जीव यह जानता है कि शरीररूप यन्त्र बिगडता है तो क्यों नहीं अपने बुद्धि बलसे उसे सवार लेता? जीव यदि ऐसा कर लेता तो क्या उसकी अकाल मृत्यु होती?

हम इस विषयमें जो कुछ समझ सके हैं उसके अनुसार कहते हैं। आत्मामें मरण शील गुण नहीं है इसीसे आत्मा अमर कह लाती है। जहां जीव है वहीं आत्मा ठहरती है। जीव की मुक्ति सहज नहीं है। जीवके काम मुक्तिके लिये हैं, इसीसे जीव बार म्बार जन्म लेकर काम करता है। जहां जीव शरीरको त्याग कर चला जाय वहां समझना चाहिये कि वह उस शरीरके काम को कर चुका। तब वह जिस देहमें जानेसे अपने वर्त्तमान जन्मके

कर्म्मफल भोग कर नये कर्म्म सञ्चय करनेके योग्य होसकता है वह अपनी आत्मा सहित उसी शरीरमें जाता है। मनुष्य की आशा ज्ञानपिपासा और धर्म्म की लालसा यदि एकही जन्म में पूरी हो जाती तो जन्म लेने और मरने की संख्या संसारमें इतनी न बढ़ती। मनुष्य कर्म्मके अनुसार फल भोग करता है, फल भोग करनेका काल अतीत होजानेसे उसे दूसरे शरीरमें जाकर वर्त्तमान जन्मका फल भोगना पड़ता है। इसीप्रकार जबतक उसका काम शेष नहीं होता तबतक उसको जन्म लेना और मरना पड़ता है। मनुष्य को ज्ञान है और इस ज्ञानसे वह अपने शारीरिक और मानसिक विकलता का संस्कार यथासम्भव करनेकी चेष्टा करता है; परन्तु जहां कहीं कुछ उपकार न दिखाई दे वहां समझना होगा कि उसके इस जन्मके फल के भोगने का समय अतीत हो गया। इसीसे उसे शरीर त्यागना पडता है। यद्यपि शरीर इसीप्रकार बनता बिगडता है तथापि शरीरके स्वास्थ्य की रक्षा न करना अथवा आत्महत्या की चेष्टा करना बुरा काम है। इस संसारमें रहनेके समय ईश्वरके नियम पर चल कर ज्ञान और धर्म्म की उन्नति करनाही जीवका श्रेष्ठ कर्म्म है। जो लोग ऐसा करते हैं उनको अकाल मृत्यु जनित अभाव भी दूर हो जाता है। वह जिस लोकमें जन्म ग्रहण करते हैं वहां उनकी उन्नतिही होती है। सो यदि हमलोग भावी कार्य्यके सुफल लाभकी ओर दृष्टि रख कर आत्मा की उन्नति करसकें तो इस संसारमें किसीको भी अकाल मृत्युकी आवश्यकता न पडे। जीव जन्ममृत्युके अधीन है। यह अधीनता छूटजानेसे उसके कर्म्म फलभोग करनेमें व्याघात पड़ता है। जन्म मृत्यु है इसीसे जीव उन्नति और अवनतिके क्रमको प्राप्त करके भावी मङ्गलपथ पर चलनेमें समर्थ होता है। सारा ब्रह्माण्ड जिस मङ्गलमय भगवान के नियमों के वशवर्त्ती होकर अशेष कल्याण साधन करता है उसके विरुद्ध चलना जीवका

धर्म्म नही है। इसीसे ज्ञान रहते भी जीव ईश्वरके नियम पर चलता है।

उन्नतिकी ओर चलनेसे जीव का ज्ञान क्रमसे बढता है। इससे उसमें ज्ञानका होना जिसप्रकार स्पष्ट होता है जड धर्म्मी शरीरोंमे वैसाही अज्ञान का पता मिलता है। अर्थात् जड जडही रहता है। इन दो विषयोंके कार्य्य कारण-भावकी आलोचना करनेसे प्रकाश होजाता है कि जड देह स्वयसिद्ध भावसे कभी ज्ञानका प्रकाश नहीं कर सकती।

---

# हमारी परीक्षा।

कर्म्मफल भोगनेके लियेही जन्मान्तर होता है। जीव का सुख दुःख पूर्व्व जन्मके पुण्य पाप पर निर्भर है। पूर्व्व जन्मके पुण्यहोसे जीव अच्छे घर अच्छेकुलमें जन्म लेता है। और श्रेष्ठ पदवी पाता है। तब वह अच्छी विद्या बुद्धि तथा प्रचुर धन सम्पत्ति रहनेके कारण आनन्दसे काल बिताता है। ऐसी सुखकी अवस्था पाकर जो लोग धर्म्मके सीधे मार्ग पर चल खडे होते हैं वह अगले जन्ममें उससे भी अच्छेकुलमें उत्पन्न होते हैं और उससे भी अधिक सुखी होते हैं। परन्तु यदि अच्छे घर जन्म और सब बातोंका सुख पाकर भी मनुष्य अपनी उन्नति न कर सके तो उसकी भावी अधोगति का मार्ग खुलता है। पाप पुण्यके फलसे जीव की ऐसी दशा होती है। जो लोग नीचकुलमें जन्म लेते हैं और सब प्रकार का कष्ट पाते हैं समझलो कि यह उनके पूर्व्व जन्मके पापों का फल है।

ईश्वरने मनुष्यको अपना भला बुरा सोचने की शक्ति दी है। इससे मनुष्य विचार सकता है कि कौन काम अच्छा है और कौन बुरा। कौन काम करना शुभ होगा और कौन अशुभ। यह विचार करके मनुष्य जिस पथको भला समझे उस पर चल भी सकता है। इसीका नाम है मनुष्य की स्वाधीनता। इसी स्वाधीनताके गुणसे मनुष्य यदि भला बनना चाहे तो बन सकता है और न चाहे तो बुरा भी बन सकता है। जब यह बुराई भलाई मनुष्यके वश की बात है तो भी वह दुःख भोग क्यों करता है? लोग इच्छा करते हैं कि सुख मिले; परन्तु कष्ट मिलता है, इसका क्या कारण? क्या कोई धनी ऐसी भी इच्छा करता है कि वह कंगाल होकर कष्ट भोगे? क्या कोई मातापिता ऐसी भी इच्छा करते हैं कि उनकी सन्तान अपने बुरेभले को न सोच कर पशुओं की भांति जीवन वितावे? कौन है जो सुख नहीं चाहता ऐश्वर्य्य नहीं चाहता? फिर क्यों मनुष्योंमें बहुत लोग चिर दुःखित रहते हैं तथा कुछ लोग कुछ काल पीछे सुखी भी होजाते हैं? समाजक्षेत्र में विचरण करके देखो प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी भलाई की चेष्टा करता मिलेगा। उनकी इच्छा उनके काम तथा उनके पथ अलग अलग होसकते हैं, परन्तु यह इच्छा सबके जीमें है कि सुख मिले। इनमें से किसीका चाहा काम पूरा होता है, किसी का थोड़ा बहुत पूरा होता है और किसी का उलटा होजाता है और वह भले की इच्छा करता हुआ घोर विपदमें पड़जाता है,—यहां तक कि कितने लोगों की आयु दुराशा करते करतेही बीत जाती है। इस प्रकार भिन्न भिन्न अवस्थाओंके होनेका कारण क्या? जब सब की मूल इच्छा एकही है तो क्यों ऐसा होता है?

मनुष्यके पूर्व्व जन्म था जिसप्रकार यह बात निश्चित है उसी प्रकार यह भी निश्चित है कि उसका फिर भी जन्म होगा। कर्म्म फल दाता ईश्वरने मनुष्यको कर्म्म फल भोगनेका अधिकार दिया

है। यह अधिकार मनुष्य को एक प्रकार की स्वाधीनतामें गिन जासकता है। पर इस स्वाधीनता और प्रकृत स्वाधीनतामें भी है। क्योंकि जो स्वाधीन है उसकी मति गति में कोई बाधा नहीं देसकता। देखिये, मनुष्योंको इच्छा तो यह है कि सुख मिले, परन्तु उनके मानसिक भाव विभिन्न हैं—तथा उनको कार्य्य प्रणाली भी विभिन्न होती है। कोई भला काम करके सुखी होनेकी चेष्टा करता है। भले कामोंसे पुण्य सञ्चय होता है और बुरे कामोंसे पापकी वृद्धि होती है। पुण्यका फल अतुलानन्द है, पापका फल महाकष्ट। एकही इच्छाके लिये कोई सुखी होता है और कोई महाकष्ट पाता है। क्योंकि मनुष्य स्वाधीन भी नहीं है। स्वाधीन होता तो सबको सुख मिलता। परन्तु सुख दुःख सब पुराने कर्म्मका फल है इसीसे कोई सुखी होता है और कोई दुःख भोगता है। इससे स्पष्ट है कि वास्तवमें मनुष्य स्वाधीन भी नहीं है, वह स्वयं कुछ नहीं कर सकता है—भाग्यके लेखके अनुसार उसकी प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है और उसीके अनुसार उसे सुख या दुःख मिलता है।

अब यह देखना चाहिये कि अदृष्ट क्या है और उसका फलाफल क्या है। ज्योतिष शास्त्रसे जाना जाता है कि ईश्वर प्राणी गण की सृष्टिके समय उनके भावी शुभाशुभ का निदर्शन उनके सारे शरीर में अङ्कित कर देता है। क्या स्त्री क्या पुरुष सबके हाथ पाव मस्तक आदि में उक्त विधि की लिखी रेखाए देखी जाती है। अङ्ग सामुद्रिक जाननेवाला मनुष्यके ऐसे चिह्न देखतेही बता सकता है कि वह अमुक वर्ष अमुक महीने तथा अमुक तिथि को उत्पन्न हुआ है। तथा उसके जन्म समय अमुक लग्न अमुक नक्षत्र था। जन्म लग्न ठीक करनेके पीछे ज्योतिषी यह सब भी बता सकता है कि किसके कितनी सन्तान होगी कौन वर्ष उसके लिये भला और कौन बुरा फल देनेवाला होगा। इसी प्रकार

जन्म से मृत्यु तक सब बातें सामुद्रिक से मालूम होसकती हैं। कोष्ठी के विचारसे भी ऐसी सब बातें भली भांति जानी जासकती हैं। मनुष्यने पूर्व जन्ममें क्या कार्य्य किया है और उसका फल इस जन्ममें क्या मिलेगा, इस विषयको साधारण लोग नहीं जानते हैं इसीसे इसका नाम पड़ा है अदृष्ट। इस अदृष्ट को ज्योतिष शास्त्रके बलसे प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इससे भी यही जाना जाता है कि मनुष्य संसारमें आकर अपने अपने कर्म्मका फल भोग करते हैं। ईश्वरके नियमको अतिक्रम करके कोई भी नहीं चल सकता। ईश्वरका जीव ईश्वरके नियम पर चलता है और अपना अपना कर्म्मफल सब भोगते हैं यही देह धारण करने का कार्य्य है। इससे कहना पड़ता है कि यह संसार मनुष्यके लिये परीक्षाका स्थल है।

बालक विद्यालयमें जाकर जिसप्रकार शिक्षा पाता है परीक्षा में उसकी सब बात विदित होजाती है। उसीप्रकार मनुष्यने पूर्व जन्ममें क्या कार्य्य किया है उसका फलाफल इस जीवनमें विदित होजाता है। जो बालक लिखना पढ़ना सीखनेमें ध्यान रखता है उसकी परीक्षाका फल भी सुन्दर होता है। जो पढ़ने लिखनेमें मन नहीं लगाता उसे परीक्षा कठिन भी जान पड़ती है और उसका फल भी अच्छा नहीं होता। जो लोग पुण्यात्मा हैं उनके कामोंसे सबको सन्तोष प्राप्त होता है और पापात्माओंके कामोंसे सबको असन्तोष होता है और क्लेश पहुंचता है। जो लड़का पढ़ने लिखनेमें ध्यान नहीं लगाता और वार्षिक परीक्षामें अच्छा न निकलनेके कारण पुरस्कार नहीं पाता उसके मा बाप जिसप्रकार उसे पढ़ाने लिखानेसे एकबारही उदासीन नहीं होजाते हैं वरन् पहलेसे और भी अधिक यत्न उसके पढ़ाने लिखानेमें करते हैं। उसीप्रकार जो सारे ब्रह्माण्डका पिता है वह भी सदा पतित जीवके उद्धारकी चेष्टा करता है। वह प्रतिक्षण मनुष्यके शुभाशुभ कार्य्य का फल प्रत्येक को दिखा कर यह शिक्षा देता है कि तुम पापको

यन्त्र ा देख कर पापको छोड़ो। पुण्यके अपार आनन्दको देख कर पुण्य पथ पर चलो। यदि तुम इस जन्ममें कष्ट पाकर भी भले पथको न छोड़ोगे तो अगले जन्ममें तुमको अवश्य सुख मिलेगा। मनुष्य अगर भगवानके दिखाये हुए इस पथ पर चले तो संसारमें पापका सोता इतना न बढ़े। पुण्यका पूर्ण चन्द्रमा प्रकाशमान हो और यह जन्म शान्ति निकेतन स्वरूप होजाय।

स्वर्गके द्वार सबके लिये खुले हुए हैं मनुष्य इच्छा करनेसे स्वर्ग की विमल ज्योति, उपभोग कर सकता है। परन्तु जो महामोह में मुग्ध हैं अर्थात् पूर्व जन्मके पापों का फल भोग करते हैं वही इससे वंचित होते हैं। यह पृथिवी किसीके लिये स्वर्ग है और और किसीके लिये नरक। धर्मशील लोग भूमिके किसी भाग पर उत्पन्न हों और किसी अवस्था में हों वह सदा स्वर्गको विमल ज्योति उपभोग करते हैं। धर्मशीलके हृदय में जो आनन्द का अमृत बरसता रहता है इस संसारके विषयी लोगोंके किसी सुखसे भी उसकी तुलना नहीं होसकती। जो लोग विषय हलाहल पी रहे हैं ईश्वरके प्रेमियों की उससे क्या तुलना होसकती है ? जिनके चारोंओर आनन्द फैला हुआ है, रात दिन जिसका हृदय प्रफुल्लित है उस आनन्द की क्या तुलना होसकती है ? जो संसार को प्रेमकी आंखोंसे देखते हैं उन्हीके लिये यह संसार स्वर्ग है। वह धनके दास नहीं हैं अपितु सारा ब्रह्माण्ड उन्हीं की सम्पत्ति है। कितनेही नयन प्रफुल्ल कर स्वाभाविक सौन्दर्य,—कितनेही सुरीले पक्षियोंके कल कण्ठ निसृत सुमधुर रव—कितनेहीं नदनदियों का मीठा जल,—कितनेहीं अमृत तुल्य फलोंका सुस्वादु रस,—आकाशके उज्ज्वल ग्रह नक्षत्रों की विमल प्रभा, अयाचित निर्मल मलय समीरके झोंके तथा ईश्वरके दर्शनरूप ज्ञान लाभसे जो आनन्द अनुभव करते हैं, यदि कोई इस विश्वका अधीश्वर होसके तौभी उसे वैसा आनन्द प्राप्त न होगा। यदि विषयमें सुख होता तो

मन क्यों भगवत सम्बन्धी आनन्दकी ओर दौड़ता ? विषयसे ज्यों ज्यों वैराग्य होता है त्यों त्यों ईश्वरमें श्रद्धाभक्ति अधिक होती है। विषय भोगके रहते भी जिनका मन निर्लिप्त है उन्हींका जीवन सफल है। धन है तो अच्छी बात है उससे दीन दुःखित लोगों की सहायता करो, कुटुम्बको पालो। देशकी उन्नति करो ईश्वर से प्रेम करो तभी तुम्हारे उस धन का होना सार्थक है। जिस अर्थसे अनर्थ उत्पादन होता है विषय भोगकी ओर मन जाता है जो दीन दुःखी लोगों और ईश्वरकी ओरसे विमुख करता है ऐसा अर्थ किसी काम का नहीं है। अर्थ का प्रधान प्रयोजन यह है कि उसे दूसरोंके और अपने काममें लाओ। जिन लोगोंने अर्थ का यह विशेष गुण समझ लिया है उन्हीं का अर्थ सार्थक है।

ऊपर कहा गया है कि जो लोग मोहमें मुग्ध है अर्थात् जो पुराने पापोंके फन्दे में फंसे हुए हैं वही इस संसारके सुखसे बंचित होते हैं। क्योंकि उनके मन का भाव भिन्न प्रकार है। वह विचारते हैं कि इस शरीर के नाश होजाने के बाद कुछ भी नहीं रहता। जो कुछ करना हो इसी शरीरसे करलो। वह लोग आगा पीछा कुछ न विचार कर सांसारिक सुखमें पड जाते हैं। उनकी विषय वृद्धि की वासना धनमान वृद्धि की कामना, इन्द्रियों की सेवा की आसक्ति, पान भोजन की अनुरक्ति प्रबल होजाती है। इसीसे मुख्य कार्य्यमें भ्रम प्रमाद आपडता है। हम जिसे भ्रम प्रमाद कहते हैं वह पुराने जन्मके अवश्यम्भावी बुरे फल के सिवाय और कुछ नहीं है, हमारे शास्त्रोंमें यह बात अच्छीतरह खोल कर दिखलाई गई है कि कर्म्म का नाश किसी तरह नहीं होसकता। अर्थात् जो जैसा करता है वह वैसाही फल पाता है। भला बुरा एकही होता तो उनके लिये मनुष्यको पुरस्कार या तिरस्कार क्यों होता ? भले काम का फल अच्छा है ज्ञानवान यही जान कर बहुत कष्ट उठा कर भी भले पथ पर चलते हैं। भलेका फल भला

होगा और उसे हम अवश्य भोग करेंगे यदि मनुष्यके जी में ऐसी धारणा न हो तो वह कभी भला काम नहीं करेगा। यदि पूर्व जन्मके बुरे या भले फलोंको भोगता हुआ मनुष्य भी ईश्वरको न भूले तभी उसका इस संसारका काम ठीक समझा जाता है। ऐसा करनेवाले की अगले जन्ममें निश्चय अच्छी गति होती है।

प्रति जन्ममें जीवकी परीक्षा होती है। पूर्वजन्ममें जैसा किया है नये जन्ममें वैसाही भोगना जीवका यह साधारण धर्म्म उसके जन्मके साथ साथ चला जाता है। कर्मफलसे जब जीवकी उन्नति या अवनति होती है तो उससे स्पष्ट होजाता है कि बिना उन्नतिके जीवकी दुर्गति दूर नहीं हो सकती। अब यह देखना चाहिये कि जीवकी उन्नति कैसे हो सकती है। केवल मुँहसे कहनेसे सत्पथ नहीं मिल सकता और न उन्नति हो सकती है। संसारक्षेत्रमें रहनेसे पहले भलाई बुराईका बिचार करना होगा पीछे जब जान पड़े कि अमुक पथ भला है तो उसी पर चलना चाहिये। भलाई बुराई इच्छा और कार्य्य पर निर्भर है। भली इच्छा होनेसे अच्छे कामकी ओर ध्यान जाता है। झटपट सुख देनेवाले विषयोंमें यद्यपि थोड़ी देरका सुख पाया जाता है परन्तु अपनेको पवित्र करके उन्नति करनेमें वैसा सुख छोड़ देना पड़ेगा। धर्म्मपथ पर रह कर संसारमें व्रतके व्रती हो,—पुण्यकी मंगल छायामें विश्राम करो तब देखोगे कि तुम्हारे अन्तरका भाव दिन दिन उन्नत होता है। अपने अन्तरको तुम जितना उन्नत कर सकोगे दयामय ईश्वर तुम्हें उतनीही अधिक सहायता देंगे। उस कृपासे तुम्हारा सब दुःख दूर हो जायगा। तब तुम इस संसारके अनित्य सुखभोगकी लालसा त्याग कर सदा नित्यधामके नित्यसुखमें अनुरक्त होगे। तुम्हारे अन्तरकी पिपासा जिस रसके पीनेको सदा आग्रह करती है उस समय उस सुनिर्मल ज्योतिकी ज्योति, परम पुरुषके आविर्भावसे तुम्हें वही रस पान करनेका अधिकार मिलेगा। वही

तुम्हारा इस मनुष्य जन्मका कर्त्तव्य है। यह काम नित्य करो। तुम देखोगे कि दिन दिन तुम्हारी उन्नति होती है; तुम्हारे हृदयमें आनन्दकी मन्दाकिनी बहती है नयन उस कमलनयनके चरणकमल को छोड़कर और ओर नहीं जाते हैं,—सदा उसीका प्रेमानन्द उपभोग करनेको दौड़ते हैं। इस संसारमें तुम्हारा यही सत्पथ है। इसके सिवाय सब कुपथ है। सावधान! इस पथको न छोड़ो। कुपथमें मत जाओ। कुपथमें बहुत लालच हैं वह तुमको सुपथमें जानेसे रोकेंगे। सो चाहे कैसाही कष्ट पाओ, सत्पथ पर चलो। जितनाही दृढ़भावसे सतपथ पर चलोगे उतनाही तुम्हारा परिणाम शुभ होगा। इस जन्मकी परीक्षाके फलसे तुम परलोकमें उच्चश्रेणीके अधिकारी होगे इसमें सन्देह नहीं।

जब तक मनुष्य आत्म-कर्म्मफलोंको अपने अन्तरमें नहीं अनुसन्धान करनेमें समर्थ होता तब तक अपनी उन्नतिसाधनमें अग्रसर नहीं हो सकता। जब तक हम यह न जानेंगे कि हमारा काम क्या है, हम सुख दुःख क्यों भोगते हैं, कर्म्मफल कैसे भोगा जाता है; तब तक हमारा मोह नहीं छूट सकता। विवेकबुद्धिके बलसे यह मोह दूर किया जाता है। चेष्टा और यत्नसे विवेकबुद्धि बढ़ती है। विवेकबुद्धि पानेसे मनुष्य अपने कामोंको जांचनेमें समर्थ हो जाता है और जब वह अपने काम समझने लगता है तो उसे सद्गतिका पथभी दिखाई देने लगता है। जो लोग सद्गतिके मार्ग पर चलते हैं उन्हींका जन्म सार्थक है उन्हींका जीवन सुखका निकेतन बनता है। उनके पूर्वजन्मकी परीक्षा और भावीकालका फल बड़ाही सन्तोषजनक हो जाता है। मनुष्य इस जन्ममें पूर्वजन्म की सुकृति दुष्कृतिका फल भोग करता है इसीसे उसके इस जन्मका नाम परीक्षा स्थल है।

———०———

# अदृष्ट और कर्म्म।

अदृष्टवादी कहते हैं कि जीवका अदृष्टही प्रधान है। चाहे मनुष्य कुछ करे चाहे हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे, जो कुछ उसके अदृष्ट ( भाग्य ) में लिखा है वह अवश्य होगा। देखाभी जाता है कि कितनेही अवहीन कङ्गाल लोग थोडेही दिनमें बडे आदमी हो गये हैं। कितनेही लखपति कङ्गाल होकर अनके मोहताज होगये। कितनेही बीमार मौतके मुंहसे निकल कर भले चङ्गे हो गये और अच्छे हृष्ट पुष्ट लोग रोगी होकर अचानक कालके गालमें चले गये। मूर्ख ज्ञानी हो गये और पण्डित पागलखानेमें भेजे गये। पापी धर्म्मात्मा हो गये और धर्म्मात्मा नीचसे भी नीच कर्म्ममें लिप्त हो गये। इन सब बातोंसे यही प्रतीत होता है कि अदृष्ट बडा बलवान है। वही मनुष्यको सब खेल खेलाता है। जब मनुष्य सुख या दुःख अदृष्टहीसे पाता है तो अदृष्टवादी क्यों न कहें कि अदृष्टही प्रधान है।

पहले प्रतिपन्न हो चुका है कि जीव पूर्व जन्ममें जैसे कर्म्म करता है परजन्ममें उसका वैसाही फल भोगता है। जीवका यह साधारण धर्म्म उसके जन्मके साथ साथ लगा रहता है। कर्म्मफलसे जीवकी उन्नति या अवनति होती है, उससे भी यही समझमें आता है कि उन्नति बिना जीवकी दुर्गति दूर नहीं हो सकती। यहभी देखते हैं कि शरीरमें काम करनेकी शक्ति है, मनमें उत्साह है और उस उत्साहको लेकर जब हम जरा बुद्धिमानीसे काम करते हैं तो फलभी अच्छा होता है। जब ईश्वरका यह नियम हम स्पष्ट रूपसे देखते हैं तो कर्म्ममें रत रहना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है।

निस्सन्देह मनुष्य अदृष्टके चक्रमें घूमता है ! परन्तु वह अदृष्टभी तो उसके पूर्वजन्मके कर्म्मही से बना है। पूर्वजन्मके कर्म्मके फलसे हम जो अदृष्ट पाते हैं उसके अनुसार हमारी अवस्था होगी यह ठीक है; परन्तु इस जन्ममें वह अवस्था पाकर यदि हम पुण्यकार्य्य में अग्रसर न हों तो अगले जन्म शुभ अदृष्टकी क्या आशा कर सकते हैं ? जब कर्म्म-फलहीसे अदृष्ट बनता है तो कर्म्मको मनुष्य कैसे छोड़ सकता है ?

कर्म्म अदृष्टका बाप है। अदृष्ट जीवका साथी है। माता पिताको हम परमाराध्य समझ कर भक्ति श्रद्धा करते हैं, भाई बहिन पुत्र कन्यासे स्नेह ममता रखते हैं। स्त्रीसे हमारा कितनाही प्रेम होता है-स्वजनोंको हम कितनाही चाहते हैं। यह सब लोग हमारे बहुतही घनिष्ट और निकट सम्पर्कीय हैं परन्तु कर्म्म और अदृष्ट इनसे भी अधिक घनिष्ट सम्पर्क रखते हैं। लौकिक सम्बन्ध मनुष्यके जीवनके साथ है। जब तक हमारा यह जीवन बना हुआ है तभी तक माता पिता पुत्र मित्रसे हमारा सम्पर्क है। शरीरके नाश होतेही वह सब सम्पर्क छूट जाता है॥ किन्तु अदृष्ट और कर्म्म हमारे जन्म जन्मके साथी हैं। पूर्व जन्मके कर्म्मफलसे बना हुआ अदृष्ट हमको आश्रय करता है और जब हमारा बिनाश होता है तो इस जन्मके कर्म्मफलसे बना हुआ अदृष्ट हमारी आत्माके साथ साथ जाता है। इसीसे अदृष्टको साथी कहते हैं। यदि इस जीवनमें ही हमारा सब बखेड़ा दूर हो जाता तो अदृष्टवादियोंका कहना कुछ ठीक होता। पर जब देखते हैं हमारा शरीर बिनष्ट हो जाने पर भी हम आत्माके साथ रह कर इस लोकका कर्म्म फल भोगनेके लिये दूसरा शरीर धारण करते हैं और जब कि यह कर्म्मफल अदृष्ट बन जाता है तो इस जन्ममें रह कर अगले जन्मकी भलाईकी कामना करना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है इसमें कुछ सन्देह नहीं।

शरीरकी कार्य्यकारिताका गुण, इच्छाकी कार्य्यप्रापिका भाव और विवेकका न्यायपथ दिखानेका भाव, जब हमारे शरीरही में है तो कर्मसे निर्लिप्त रहना किसी प्रकारभी युक्तिसंगत नहीं है। ईश्वरने मनुष्यको इतना अधिक अधिकार दे दिया है, हम लोग यदि नियत कार्य्यक्षेत्रमें विचरण करें तभी उसका फल प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकते हैं। ढीला आलसी आदमी जिस प्रकार अपनी अवस्थाकी कुछ उन्नति नहीं कर सकता उसी प्रकार हम लोगभी कार्य्यमें न प्रवृत्त होनेसे दयामय ईश्वरकी दी हुई क्षमताके बलको देख नहीं सकते हैं। यदि इस क्षमताका परिचय लेना हो तो, काममें लगो—देखोगे कि मनुष्य शिल्प और विज्ञानके बलसे कैसे सूक्ष्म और महत् कार्य्य सम्पन्न कर सकता है। जो काम मनुष्यके लिये दुःसाध्य कहे जाते थे वह मनुष्य द्वाराही सम्पन्न हो गये हैं। विद्या और शिक्षाके गुणसे मनुष्य इस उच्च अधिकारको पाता चला आता है। उनमें भी जिस विद्या और शिक्षाके गुणसे अध्यात्मतत्त्व विषयका ज्ञान उत्पन्न होता है उसी विद्या और शिक्षासे मनुष्य सर्वोच्च अधिकार पा सकता है। इसमें प्रवेश करते समय पहले कुछ कष्ट होगा परन्तु पीछे वैसा न रहेगा। ज्यों ज्यों आगे बढ़ोगे खुला मार्ग मिलेगा मन दृढ़ होगा आनन्द मिलेगा और जब अन्तमें अपार दृष्टि देनेवाले परमात्मामें तुम्हारी आत्माका साक्षात् होगा तब तुम्हारा यह नश्वर शरीर धन्य होगा और तभी जान सकोगे कि ईश्वरने मनुष्यको कितना बड़ा अधिकार दिया है। कार्य्यमें लगा रहनाही मनुष्यका काम है यह बात तब सहजहीमें आ जायगी।

अदृष्टवादीके मतमें जिस प्रकार अदृष्ट प्रधान है अध्यात्मवादी उसी प्रकार कर्मको श्रेष्ठ मानते हैं और बातभी यों है कि कर्मको त्याग करनेसे अदृष्टको गुप्तताका उपलब्ध करना कठिन है। इसीसे कर्मको कौन प्रधान न कहेगा? कर्मही मनुष्यका सर्वस्व है। कर्मसेही मनुष्य गिरता है और कर्मसेही उठता है। जिस दीर्घ

पथमें चलना है उसमें यदि कर्म्म बन्धु तुम्हारा सहाय हो तो फिर तुम्हें क्या खटका है ?

भूखमें जैसा अन्न है प्यासमें वैसाही पानी है। इच्छाके साथ जिस प्रकार कर्म्म है कर्म्मके साथ उसी प्रकार सिद्धि है। सिद्धिके साथ जिस प्रकार ब्रह्मलाभ है ब्रह्मलाभके साथ उसी प्रकार आनन्द है। यदि तुम कोई कामही न करोगे तो कोई कैसे जानेगा कि तुम भले या बुरे हो ? तुमने संसारमें जन्म लिया है, तुम्हारे पुत्र कन्या कुटुम्बी हैं, एक और संसार छोड़ कर इस संसारमें आये हो और कुछ दिन पीछे इसे छोड़ कर तुम्हें दूसरे संसारमें आना होगा। इस समय तुम्हें पूर्व संसारकी भावना नहीं है, वर्त्तमान दो संसारोंके विषयमें विवेचना करना चाहिये। एकसे अनुरक्त और दूसरेसे विरक्त रहनेमें दोनोंको न साध सकोगे इसमें बीचों-बीच चलना चाहिये। जब तुम इस संसारमें हो तो यहांके काम बहुत सुन्दर रीतिसे करो। यदि इस संसारके कामोंको सुशृङ्खल रूपसे कर सकोगे तो अगले संसारका कामभी सरलतासे होता जायगा। तुम अपने कुटुम्बियोंका पालन और पडोसियोंका उपकार भली भांति कर सकोगे तो तुम अपने हृदयकी पियासा बुझानेका कामभी कुछ कर सकोगे। धीरे धीरे तुम इस लोकके कामके साथ परलोकका कामभी करने लगोगे। एक बात सदा याद रखना कि समय कम है और जाना दूर है। इस अल्प समयमें ही मार्गके लिये जो सम्बल संग्रह करना है करलो। तुम्हारे शरीरके साथ जीवनका कुछ दिनका सम्बन्ध है किन्तु तुम्हारे और तुम्हारी आत्माके साथ परमात्माका अच्छेद्य सम्बन्ध बना रहता है, यह बात सदा तुम्हारे मनमें जागरूक रहना चाहिये। अतएव तुम यहां रह कर आत्म-अनुसन्धानमें रत हो। तुम कौन हो तुम्हारी आत्मा क्या है तुम्हारा कार्य्य क्या है और परमात्मा क्या है तथा तुम्हारे और तुम्हारी आत्माके साथ परमात्माका क्या सम्बन्ध है यह सब

बालें सद्गुरुके पास जाकर पूछो। तुम देखोगे कि तुम्हारा यह शरीर पञ्चभूतमें मिल जायगा परन्तु तुम्हारे अस्तित्व और तुम्हारी आत्माका ध्वंस न होगा। तुम जान सकोगे कि कैसे इस शरीरके पिञ्जरेसे उडकर तुम दूसरेमें जा बैठोगे। शिक्षा और ज्ञानबलसे अपना बल बढा लो तब कार्य्यसिद्धिके साथ ब्रह्मानन्दका जो योगायोग है वह परिष्कार रूपसे तुम्हारी समझमें आ जायगा। कर्म्मत्यागी होकर उदासीन रहनेसे कोई उच्च अधिकार नहीं पा सकता। समझ लो कि कर्म्मही सर्व प्रधान है।

ईश्वरको लाभ करके सुखी होंगे, यह इच्छा मनुष्यके जीमें क्योंकर होती है? यह शरीरकी कोई व्याधि है या मनकी कोई क्षमता है जिससे मनुष्य परमपिताका दर्शन करना चाहता है। स्मरण रहे श्रद्धा और भक्ति बहुत बड़ी वस्तु है। श्रद्धा और भक्तिसे ईश्वर निकट हो जाते हैं। जो जिस काममें लगा रहता है वह काम उसके लिये सरल हो जाता है धीरे धीरे उस काममें सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार धीरे धीरे ईश्वरको निकट करनेसे ईश्वरभी निकट हो जाता है। बाल्यकाल केवल खेलमें बिताया जवानी इन्द्रियोंके सुखमें खोई, बुढापेमें आलसी होकर पड रहे ऐसा मनुष्य क्या सुखको पा सकता है? ज्ञान गुरुकी कृपासे मनुष्य यह मार्ग पा सकता है। तब अन्तरको पवित्र करना चाहिये, साधनमें योग देना चाहिये, गुरुके उपदेशको सिर पर धरना चाहिये तभी परमात्माका दर्शन मिलेगा। सब अच्छे कामों के अन्तही में पुरस्कार मिलता है परन्तु शुभकार्य्यके आरम्भही में मनमें आनन्दका सचार होता है फिर धीरे धीरे वह आनन्द बढता है। अन्तको वही नित्यानन्द हो जाता है। जब तुम भक्तिमार्गमें खड़े होकर दिव्यचक्षुसे परमात्माका दर्शन करोगे तभी तुम्हारा मानव जन्म सफल होगा। फिर सुनो अदृष्ट ठीक है परन्तु कर्म्म त्यागी होकर अदृष्टके भरोसे पर कभी न बैठो। कर्म्म करो कर्म्मही

से अदृष्ट उत्पन्न हुआ है और कर्मोंहीके परम्परामें प्रारब्ध मिलेगा। जिस कार्यसे आगे अदृष्ट प्रबल होता है वही कार्य मनुष्यके जीवनका प्रधान कार्य है। जो लोग केवल अदृष्टके भरोसे पर बैठे रहते हैं उनका भावी फल बड़ा शोचनीय होता है। यही उपदेश भगवान कृष्णचन्द्रने गीतामें किया है।

---

## जीव तत्त्व।

मनुष्य क्या है, कहांसे आया है, उसका वास्तव क्या है, आगे उसकी क्या दशा होगी; इन भूत भविष्यत और वर्तमान काल की बातों का ज्ञान हुए बिना मनुष्य को अपने कर्तव्य की शिक्षा नहीं होसकती। जो अपने आपको ही नहीं जानता वह अपनी गतिको क्या समझेगा? ऐसी दशामें मनुष्य को सिवाय भटकनेके और कुछ ठिकाना नहीं। इससे पहले अपने आपको पहचानना चाहिये। ईश्वरने जो यह विश्व-ब्रह्माण्ड बनाया है हमारा भूलोक भी उसीके अन्तर्गत है। हमारे इस पृथिवीलोकमें नानाविध पदार्थ हैं। यह सब पदार्थ अमर हैं। आज हम एक पदार्थको एक रूपमें देखते हैं कल उसका दूसरा रूप होसकता है, एकके विकारसे दूसरे की उत्पत्ति होती है। अथवा जो जो पदार्थ जिन जिन परमाणुओं के मेलसे बनते हैं फिर उन्हींमें जा मिलते हैं। सृष्टिके इस साधारण भावको जरा ध्यान पूर्वक विचारनेसे यह बात समझमें आजायगी कि पदार्थोंका रूप अवश्य बदलता रहता है। परन्तु वह नष्ट नहीं होते।

अब जीवके विषयमें विचारना चाहिये। जीवका शरीर जड है उसमें चैतन्यभाव भी है जिसको हम जीवका जीवन कहते हैं।- यह जीवन जिसके बलसे चलता है उसे जीवका जीवत्व या जीवधर्म कहते हैं। इस जीवधर्मके सिवाय हरेक जीवमें आत्मा की सत्ता भी विद्यमान है। आत्मा ईश्वर का अंश है—वह साक्षी स्वरूप होकर हरेक जीवमें विराजती है। पृथिवी जिस प्रकार नानाविधि जड पदार्थों से पूरित है वैसेही अनन्त जीव प्रवाहमें वह प्रवेष्टित है। जब जीव जड उपादानसे मिलता है तभी उसकी सृष्टि होती है। जलमें मछली आकाशमें कीट पतङ्ग, वृक्षोंमें पक्षी और जङ्गलोंमें चौपाये इसी नियम से उत्पन्न हुए हैं।

जीवके उत्पन्न होनेका नियम हमें यह बनाता है कि जीवके शरीरसे जीवत्व और आत्मा भिन्न हैं॥ सुतरां जीव शरीरका उपादान है और जीवत्व आत्माका परिणाम अलग है। जिनका यह विचार है कि जीवका जीवन नष्ट होनेसे सब शेष होजाता है उनकी भूल है। देखते हैं कि पृथिवीका कोई पदार्थ भी ध्वंस नहीं होता है। मृत्युके पीछे जीवका जो शरीर है वह पञ्चभूतमें मिल जाता है। और जीवत्व और आत्मा भिन्नाकारसे आश्रय लेती हैं। ऊपर कह आये हैं कि पृथवी प्रकाण्ड ब्रह्माण्डके भीतर है तो इसे समझना चाहिये कि पृथिवीके सिवाय और भी कितने लोक हैं। जीव शरीरको छोड कर सूक्ष्म देह धारण करके सबसे पहले जिस लोकमें आता है उसे परलोक या प्रथम स्वर्ग कहते हैं। उसके ऊपर और भी लोक हैं। पृथिवी जीवका जन्म स्थान है। जीव प्रति जन्ममें नये नये कर्म सञ्चय और कर्माफल भोग करनेके लिये जन्म लेता है। किसी किसीका ऐसा मत भी है कि मनुष्य जन्मही जीवका शेष जन्म है मनुष्य जन्मके पीछे उसे नातर देह धारण नहीं करना पडता। आगे वह लिङ्ग शरीरमेंही रहता है। परन्तु इस मतके पोषक प्रमाण बहुत नहीं

मलते। कुछ लोगोंका ऐसा मत भी है कि जीव क्रमसे उन्नति प्राप्त करता है। पहले जीव निकृष्ट योनिमें जन्म लेता है और धीरे धीरे मनुष्य जन्म पाता है। इस विषयमें नाना मुनियोंके नाना मत हैं परन्तु नास्तिक लोग सबसे बढ़ कर विवादी हैं। वह ईश्वरकोही एकदम उड़ा देते हैं जीव [illegible] निर्णय करना तो अलग बात रही। खैर, हम इस विषयको "परलोक तत्त्व" नामक लेखमें आगे चल कर दिखायेंगे।

संसार चक्र बराबर घूमता है। इस घूमनेमें स्वभावका भी बहुत कुछ परिवर्त्तन होता है। ग्रीष्मके पीछे वर्षा, वर्षाके पीछे शरत फिर हेमन्त सीत बसन्त आदि ऋतु जिसप्रकार क्रमसे आती जाती हैं उसी प्रकार मनुष्यके जीवनमें लड़कपन जवानी और अन्तमें बुढ़ापा आता है। समयचक्रसे दिनरातमें जहां तहां कितनीही घटनाएं घट जाती हैं। संसारमें आज एक चीज एक रूपसे दिखाई देती है कल उसका औरही रूप दिखाई देता है। समयचक्र बराबर घूमता है और उसके साथ साथ परिवर्तन पर परिवर्तन होता चला जाता है। रात बीतने पर जब भोर होती है तो शीतल मन्द समीरके झोकोंसे कलियां खिल जाती हैं वृक्षोंकी टहनियां धीरे धीरे हिलती हैं चारोंओर सौरभ फैल जाती है, रातको नींदका आनन्द लेकर जीव पहले दिनका श्रम भूल जाता है और इस नैसर्गिक शोभाको देख कर आनन्दमें परिप्लुत होजाता है। पक्षियोंके मधुर स्वरसे उसका आनन्द और बढ़ जाता है। क्रमसे सुनहरी मुकुट सिर पर धरे बाल सूर्य्य उदय होते हैं। मानो अबतक रातके अंधेरेने सूर्य्यको ग्रस लिया था उससे किसीतरह पीछा छुडाकर अब निकले हैं। बड़ा आनन्द होता है परन्तु यह आनन्द कितनी देर? जब सूर्य्य भगवान हमारे सिर पर आजाते हैं तो फिर कौन उनकी ओर देख सकता है? और फिर ग्रीष्म कालके सूर्य्यकी उग्र मूर्त्तिका तो क्या ठिकाना! घरसे बाहर

निकलना कठिन होजाता है। हवा आग बन जाती है शरीर दग्ध होने लगता है। शीतल जल वायु और शीतल स्थानके लिये सब व्याकुल होजाते हैं। तब यही जान पडता है कि सूर्य्य अपनी किरणोंसे पृथिवीको दग्ध कर देना चाहते हैं। सवेरे जिनके दर्शनसे इतना आनन्द था दोपहर पीछे यह क्या विपरीत भाव? संसारका कुछभी चिरस्थायी नहीं है। सूर्य्यकी वह प्रचण्डताभी अन्तको टल जाती है। ढलतेहुए सूर्य्य मनुष्यकी ढलती हुई गतिको जनाते हैं। कहते हैं कि तुम्हारे जीवनका श्रेष्ठ काल गत प्राय है। जो कुछ करना है झटपट करलो। जो दिन चला जाता है वह फिर नहीं आता। जीवनका अच्छा अंश वृथा चले जानेसे अन्तमें परिताप करना पड़ेगा। दिन रहते अपना काम करलो। जब घोर अन्धेरा होजायगा चारोंओर सन्नाटा होजायगा तब ज्योति हीन आखोंसे क्या कर सकोगे?

जो लोग दिनका काम सूर्य्य डूबनेसे पहलेही समाप्त करना चाहते हैं उन्हें बडी फुर्तीसे जी लगा कर काम करना चाहिये। जीवन वायु बराबर क्षय हो रही है। जो दिन वृथा गया वहभी तुम्हारे जीवनमें से कट गया इसी प्रकार एक दिन जीवनका अन्त हो जाता है। यदि जीवन तत्वको समझ कर चलो तो बहुत कुछ कर सकते हो। ध्यान रखनेसे तुम्हारे जीवनके दिन रात समभावसे बीतेंगे और जब तुम अपने हृदयमें विचारोगे तो अपनेको ऐश्वर्य्य साम पाओगे। मनमें सब पकार आनन्द रहेगा और वाहरी शोक दु:ख तुम्हें कष्ट न देगा। तुम्हारे हृदयमें शान्ति विराजेगी, उससे तुममें धैर्य्य गुण उत्पन्न होगा, तुम अचल अटल होकर जीवन बिताओगे। ईश्वरमें प्रीति स्थापन करनेसे आत्माको अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है। आत्मा ईश्वरका अंश है आत्मा जब जीवदेहमें रहती है तो जीवके कार्य्यदोषकी मलिनतासे उस पर पर्दासा पडा रहता है और उसकी स्वाभाविक ज्योति मन्द हो जाती है। परन्तु

ईश्वरकी भक्तिसे वह मलिनता दूर हो जाती है और आत्मा अपनी स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त हो जाती है। ईश्वरमें मन लगानाही आत्माको निर्म्मल करनेका उपाय है। यह विशुद्धभाव लाभ करनेके लियेही मनुष्य जन्म लेता है। जीव देहमें रहनेसे आत्माका नाम जीवात्मा हुआ है। इस जीवात्माकी सहायतासे ही जीव परमात्माका दर्शन पाता है। जीव फल भोक्ता है और आत्मादृष्टा। जो लोग जीवात्माको जीव समझने लगे हैं वह भूलमें पड़ते हैं।

ऊपर कह चुके हैं कि यह पृथिवी जिस प्रकार नाना विध जड़ पदार्थोंसे भरी है उसी प्रकार अनन्त जीवप्रवाहभी इससे लिपटे हुए हैं। जब जीव जड़ उपादानसे मिलता है तभी उसकी सृष्टि होती है। अब उसके जन्म मृत्युके विषयमें कुछ कहा जाता है। जीव पहले पिताके वीर्य्यके साथ माताके गर्भमें जाता है। वहां रहकर उसका शरीर बनता है। इसीसे मातृगर्भको जीवका जन्मक्षेत्र कहते हैं। और जीव पितृदेह अवलम्बन करके जन्म लेता है इसीसे पुरुषके शुक्रको वीर्य्य कहते हैं। खेतमें बीज न डालनेसे जिस प्रकार उद्भिद नहीं उत्पन्न होता उसी प्रकार मातृगर्भमें शुक्र पतन न होनेसे जीवकी उत्पत्ति नहीं होती। खेतमें बीजके बढ़नेकी भांति माताके गर्भमें जीवका शरीर बढ़ता है। देह जड़ पदार्थ है। जड़को प्रकृतिके नियमाधीन चलना पड़ता है। जीवकी देह माताकी देहसे बनती है इसीसे माताको प्रकृति कहते हैं। और जीव अपने पिताका अवलम्बन लेकर जन्म लेता है इससे पिताको पुरुष कहते हैं। प्रकृति और पुरुषकी सहायतासे जिस प्रकार विश्व संसारकी सृष्टि होती है उसी प्रकार पिता माताके संयोगसे जीवकी उत्पत्ति होती है। जीवकी इस उत्पत्तिके साथ जिस प्रकार पिता माताका अति निकट सम्बन्ध रहा है उसी प्रकार उसके मरनेके समयभी उस सम्बन्धोंमें कुछ विलक्षणता नहीं होती। देह जड़ पदार्थकी समष्टि मात्र है। यह जड़ वा प्रकृति

जगतमें व्याप रही है। उसकी यह व्यापकता सदा देखी जाती है। अर्थात् जहां उत्पत्ति है वहीं स्थिति हो जाती है। इसीसे जीवकी मृत्युके पीछे उसकी देह जो भूमि पर पड़ी रह जाती है उसे साधमग कहते हैं और सूक्ष्म देह धारण करके जीवकी जो ऊर्द्ध गति होती है उसको पितृग्रग कहते हैं। सवेरे सवेरे एक गुलाबका फूल खिलता है खिलतेही उसमेंसे सुगन्ध उड़कर चारों ओर फैल गई और पखड़िया टूटकर भूमि पर गिर पड़ी। जीवकी गतिभी ठीक ऐसीही है। जीव भूमि पर जन्म लेकर कुछ दिन जीता है पीछे मौतके मुहमें पड कर देहको भूमिहो पर छोड़ जाता है और आप ऊपरको उड जाता है।

सुखके अन्तमें दुःख और दुःखके अन्तमें सुख यही जगतकी रीति है। "चक्रवत् परिवर्त्तन्ते सुखानि दुःखानि च"— मनुष्यका जीवनचक्र इसी प्रकार फिरता है। जिस पर दुःख पड़ता है वहभी सबको विदित हो जाता है और जिसे सुख मिलता है उसकी बातको भी सब जान जाते हैं। परन्तु यह कोई नहीं जानता कि भविष्यमें उनका जीवन सुखमें कटेगा या दुःखमें। जो सुख पाता हुआ अन्तमें दुःखसागरमें जा डूबता है उसके कष्टका ठिकाना नहीं रहता उसी प्रकार जो दुःखसागरको पार करके सुख प्राप्त करता है उसके आनन्दकी सीमा नहीं रहती। यह बात सर्वोपरि पर सर्वत्र देखी जाती है। पर समझना चाहिये कि जो सुख भोग रहा है वह पुराने जन्मके सचित पुण्यको क्षय कर रहा है और जो दुःख भोगता है वह पुराने सचित पापोंका नाश कर रहा है। अर्थात् एक सुखको समाप्त करता है और दूसरा दुःखको। जो सुखका समाप्त करता है उसे फिर दुःख पानेकी और जो दुःखको समाप्त करता है उसे आगे सुख पानेकी सम्भावना है। इसीसे सुख दुःखकी अवस्थाभी समान नहीं रहती उसमें भी परिवर्तन होता रहता है।

इन सब बातोंको समझ कर भी लोग अपनी गतिको नहीं पहचानते वह घोर विपदमें पड़ते हैं। मोहवश होकर आदमी भूलमें पड़ता है। इससे मोहको त्याग कर सरल पथ लेना चाहिये। उदार भावसे जगतमें सबके साथ स्नेह ममता स्थापन करना चाहिये। स्मरण रहे कि स्नेह और ममताही मनुष्यको डवोती है। परन्तु उदार भावसे स्नेह ममता करना मोह पाशको छिन्न करता है। पृथिवी पर स्वार्थवश मोहममतामें फंसने वाले बहुत हैं, परन्तु उदारभावसे अपना कर्त्तव्य समझ कर मोहममता करना कठिन है। जो सबको समान समझते हैं और उनके दुःखसे दुःखित तथा सुखमे सुखी होते हैं उन्हींका हृदय उन्नत और उदार भाव धारण कर सकता है। संसार बड़ा कठिन है तथापि दृढ़तासे काम करनेमें अवश्य मनुष्य उन्नति प्राप्त करता है।

मायाको हटानेसे मोह दूर होता है। मायाका दूर होना कठिन है परन्तु अभ्याससे यहभी दूर होती है। अपने लोगों अपने घर बार और धन सम्पत्ति पर जो एक प्रकारका स्वाभाविक स्नेह मनुष्यको होता है उसीका नाम माया है। भगवानने संसारको चलानेके लिये मायाको बनाया है। मायाही से संसार चलता है। परन्तु जिस मायासे आत्मामें मलिनता आती है उससे बचना चाहिये। मनुष्यमें इसके समझनेको विवेक बुद्धि प्रदान की है। यह विवेक बुद्धि रहनेसे मायाका जोर उतना नहीं चल सकता। मनुष्यमें जहां निकृष्ट प्रवृत्ति है वहां धर्म्म प्रवृत्तिभी है। धर्म्म प्रवृत्तिके गुणसे यह भला बुरा पहचान सकता है। उसीके बलसे निकृष्ट प्रवृत्तियोंका भी दमन हो सकता है।

स्वार्थी लोग प्रवृतिके अनुकूल चलते हैं। जो उनके जीमें उठता है वही करने लगते हैं। परन्तु उदारहृदय लोग ऐसा नहीं करते। वह प्रवृत्तिको दमन करके अपनी क्षमता बढ़ाते हैं। वह योगबलसे अपनी इन्द्रिय—निग्रह करते हैं। संसारकी नीच बातोंको

सबसे निकाल देते हैं। वह धीरे धीरे इन बाहरी आंखोंसे देखना बन्दकर हृदयकी आंखसे देखते हैं। धीरे धीरे उनको वह आंखें मिलती हैं जो अर्जुनको विराट रूप देखनेके समय मिली थीं। जो आंखें विज्ञानमें फसकर पहाड़ोंके नीचे गन्धक और समुद्रके पेटमें पहाड़ ढूढ़ती फिरती हैं वहभी इन दिव्य आंखोंके सामने हार जाती हैं। योगबल ऐसीही वस्तु है। योगपथ पर चल निकलनेसे विज्ञानके हथौड़े फड़वे स्वय हाथसे गिर जाते हैं।

---

# हिन्दू जाति।

हिन्दुओंमें जाति भेद है। शास्त्रोंमें लिखा है कि ब्राह्मण ब्रह्माजी के मुखसे, क्षत्रिय उनके बाहुसे, वैश्य उरूसे और शूद्र पावसे उत्पन्न हुए हैं। बहुत लोगोंकी समझमें नहीं आता कि इस प्रकार उत्पत्ति कैसे हो सकती है। परन्तु यह बात सहजमें समझी नहीं जा सकती। इसके समझनेके लिये कुछ हिन्दूभाव और हिन्दू विचारकी आवश्यकता है। सृष्टिके रचने आदिमें हिन्दू, ईश्वरके तीन रूप मानते हैं। ब्रह्मा होकर ईश्वर सृष्टि करता है। विष्णु रूपसे पालन करता है और अन्तमें रुद्र रूप होकर सहार करता है। सो ईश्वरकी उत्पन्न करनेवाली मूर्त्ति अर्थात् ब्रह्मा बाबाने सबको बनाया। ब्राह्मण जो उनके मुखसे उत्पन्न हुए इसका यही अर्थ है कि वह हिन्दूसमाजके मुख स्वरूप हैं। हिन्दू-समाजका मुख होनेहीसे ब्राह्मणोंको विद्याबल और तपोबल दिया गया। ब्रह्मविद्याके अधिकारी वही हुए। परन्तु केवल मुख इन

मस्त्रशस्त्रों से समाजका शरीर संपूर्ण नहीं हो सकता। इसलिये क्षत्रिय ब्रह्मा बाबाके बाहुसे बने। अर्थात् अस्त्र धारण करके प्रजाके पालन करने पृथिवीकी रक्षा करनेका भार उनको मिला। इतना होने परभी समाजका शरीर पूरा न बना। तब उरु स्वरूप वैश्य बनाये और खेती वाणिज्य आदिका काम उनको दिया। अन्तमें हिन्दू समाजके पांव स्वरूप शूद्र बना कर सामाजिक अङ्ग पूरा किया। चारों वर्णके चार भेद अवश्य हैं, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि किसी एक वर्णके बिनाभी हिन्दूसमाजका काम चल सकता है। ब्राह्मण समाजका मुख है और मुख सारे अङ्गोंमें प्रधान है। परन्तु जैसी ब्राह्मणोंकी आवश्यकता है वैसीही शूद्रोंकी भी है। क्योंकि चाहे शूद्र पांव हों और पांव सब अङ्गोंमें नीचे समझे जावें। पर बिना पांवके शरीर खड़ा नहीं रह सकता। शरीरके लिये पांवकी भी उतनीहीं आवश्यकता है जितनी सिरकी। अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारोंकी बराबर आवश्यकता है। फिर यह बातभी नहीं है कि इन चारों वर्णोंके अलग अलग होनेसे आपसमें प्रीति नहीं या मेल नहीं। प्रीति है मेलभी है। यदि पांवमें चोट लगती है तबभी सारे शरीरमें कष्ट होता है और मुंह या हाथमें लगती है तबभी सारेही शरीरमें कष्ट होता है। यह नहीं हो सकता कि गिर कर टांग टूट जावे तो मुंह हंसने लगे। वरंच देखा जाता है कि टांगमें चोट लगनेसे कभी आंखे मुंद गई हैं और सारा शरीर अवसन्न होकर गिर गया है।

पुराणों और इतिहासोंमें ब्राह्मणोंके चरित्र देखो। वह सदा ईश्वरकी आराधनामें लगे रहते थे, सदा सत्य बोलते थे और सबको सच्चे मार्ग पर चलनेका उपदेश करते थे। भगवानके ध्यान करनेको ही वह परम सुख समझते थे, संसारके अनित्य सुखोंकी ओर तनिकभी ध्यान नहीं करते थे। संसारके लोगोंसे बच कर अलग बन जङ्गलोंमें कुटीर बनाते थे और बड़ी सीधीसादी रीतिसे जीवन

बिताते थे। संसारके लोगोंसे अलग रहने पर भी वह ऋषि मुनि लोग सदा संसारियोंकी मङ्गलकी कामना करते थे और कठिन समय पड़ने पर उनके पास पहुंच जाते थे। इसीसे वह हिन्दुओंके मुखिया थे हिन्दुओंके पूज्य थे। उनसे बढ़ कर प्रतिष्ठा हिन्दू किसीकी न करते थे। अब तक भी वैसे ब्राह्मणोंका हिन्दू समाजोंमें वैसाही आदर है। वह लोग सत्यवादी थे, सत्य और न्यायसे भरी हुई युक्ति युक्त बातही उनके मुखसे निकलती थी। वह इतना विचार कर बोलते थे कि जो वाक्य उनके मुखसे निकल जाता था वह निश्चय सत्य होता था। इसीसे हिन्दुओंके जी में यह बात जम गई थी कि ब्राह्मणका वाक्य कभी झूठ नहीं होसकता। ऐसे सतोगुण प्रधान ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणगणको ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न होने वाला कहा जाना बहुत उचितही है।

इसीप्रकार क्षत्रियलोग प्रजा पालन और रक्षणके लिये उत्पन्न किये गये। वह बलिष्ठ थे उनका बाहुबल सर्व प्रधान था। अपने बाहुबलसे वह शत्रुओंको दमन करते थे। बाहु रक्षा करती है इसीसे क्षत्रिय लोग ब्रह्माजीके बाहुसे उत्पन्न हुए कहेजाते हैं। बाहुसे जो कुछ काम लिया जाता है उसका भार हिन्दू जातिमें क्षत्रियोंही को मिला था। बाहुबलसे क्षत्रिय राजा हुए। इसी प्रकार दृढ़तासे व्यापार करना गायोंका पालना जी लगाकर करनेका काम है और शरीरके अङ्गोंमें ऐसी दृढ़ता उरुमेंही है। इसलिये शास्त्रोंमें कहा गया कि वैश्य ब्रह्मा जी के उरुसे उत्पन्न हुए। इसी प्रकार चौथे वर्णवाले शूद्रलोग ब्रह्माके पांवसे उत्पन्न हुए हैं उनका काम पहले तीन वर्णों को सेवा करना और उनको सहायता देना है सच पूछिये तो पांव शरीरको बहुत बड़ा सहारा देते हैं, शरीरका सारा बोझ पांवोंही पर टिका हुआ है पांवही शरीरको जहांतहां लिये फिरते हैं। जिसप्रकार शरीरमें मुखके गुण और, बाहुके गुण और, और पट आदिके गुण और हैं। इसीप्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय

वैश्य आदिमें भी गुणकी लघुता अधिकता है। गीतामें यह बात बहुत अच्छीतरह दिखाई गई है। ब्राह्मण सतोगुण प्रधान हैं, क्षत्रिय रजोगुण प्रधान हैं और इसीप्रकार शूद्र तमोगुण प्रधान हैं। इसीप्रकार सृष्टिके आदिमें गुण विशिष्टवाले यह चार वर्ण पैदा हुए, और फिर इन्हींमेंसे भिन्नभिन्न जातियां और उत्पन्न होगईं। इनके उत्पन्न होनेकी बात मनु महाराजने अच्छीतरह दिखाई है।

परन्तु जिसप्रकार हिन्दुओंमें जाति भेद है, संसारमें और कहीं नहीं है। मुसलमानोंमें हिन्दुओंकी देखादेखी या किसीतरहसे शेख सय्यद मुगल और पठानके नामसे चार जाति बनी थीं परन्तु अब उनमेंसे पठान छोड़ कर बाकी सब गपड़ सपड़में पड़ गई। इसके सिवाय मुसलमानोंका जातिभेद हिन्दुओंकी तरहसे दृढ़ भी नहीं है। इनको छोड़ क्रस्तान आदि संसारको किसी जातिमें वर्ण व्यवस्था या जातिभेद नहीं दिखाई देता। जबतक हिन्दू प्रबल थे और विदेशी अन्य धर्मी लोग इस देशमें नहीं घुसे थे तब तक भिन्न धर्मीय विचार हिन्दुओंके चित्तमें उठतेही नहीं थे। परन्तु विदेशियों और भिन्न धर्म्मियोंके संसर्गसे वह बात हिन्दुओंके चित्तमें भी उठी है। हिन्दू भी सोचने लगे हैं, कि मनुष्यमात्र एक जाति है उनमें ब्राह्मण क्षत्री वैश्य आदिका बखेड़ा होना निराश्चर्य है। हिन्दुओंमेंसे कुछ लोगोंने जाति विचार छोड़भी दिया है। वह ब्राह्मण शूद्र नाई धोबी यवन म्लेच्छ आदि सबसे मिलने और सबको अपनेमें मिलाने लगे हैं। कुछ लोग इसको दूसरे ढङ्गसे बदलना चाहते हैं। स्वामी दयानन्दजी के विचारमें इस बातकी आवश्यकता नहीं है कि जो ब्राह्मणके बीर्य्य और ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ है वही ब्राह्मण हो। इसीप्रकार वैश्यकी औलाद वैश्य और नाईकी औलाद नाई हो। उनका विचार है कि जिसमें विद्या अधिक हो वही ब्राह्मण है और जिसमें बल अधिक हो वही क्षत्रिय है। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाशमें लिखा है कि

ब्राह्मणके घरमें पैदा होनेसे कोई ब्राह्मण नहीं होसकता और न
वैश्यके घरमें पैदा होनेसे वैश्य। जबतक कोई लड़का ब्राह्मण या
वैश्यपनकी परीक्षामें पास न हो तबतक उसे ब्राह्मण या वैश्यपनकी
मर्यादा नहीं मिल सकती। इसकेलिये दयानन्दजी जैसा विश्व
विद्यालय बनाना चाहते थे। उनका मतलब है कि उक्त विद्यालयमें
सबके सब शुरू रखे जाय। ब्राह्मणोंके घरमें जो लड़के हों वह
सब गुरुओंके पास पढ़नेको भेज दिये जाय। इसीतरह क्षत्रिय
लोग भी अपने लड़कोंको वहां भेजदें तथा वैश्य और शूद्र भी अपने
लड़के भेजदें। जब लड़के पढ़ जांय तो गुरुलोग उनकी परीक्षा
लें। यदि कालू नाईके लड़केमें ब्राह्मणके गुण निकलें तो उसका
वर्ण ब्राह्मण नियत किया जाय और उसे ब्राह्मणपनकी सनद दी
जाय। इसीतरह हरिहर पांडेका लड़का यदि पढ़ने लिखनेमें
पक्का न निकले और वाणिज्य आदि की बुद्धि उसमें अधिक हो
तो उसे वैश्यपनकी सनद दी जाय। इसीप्रकार जब परीक्षा
होचुके और सबका वर्ण निश्चय होचुके तो वह लड़के अपने अपने
ठिकाने भेज दिये जाय। परन्तु यह सिद्धी कि सब अपने अपने
घरको पहुंचें। हरिहर पांडेका लड़का ब्राह्मणपनकी परीक्षामें
फेल होगया इसीसे हरिहर कालू नाईके लड़केको, जो ब्राह्मणपनकी
परीक्षामें पास होगया था अपने घर लेगया। इसीप्रकार ठाकुर
प्रतापसिंह का लड़का क्षत्रियपनकी परीक्षामें फेल होगया परन्तु
लक्खू धोबीका लड़का क्षत्रियपनकी परीक्षामें पास हुआ था।
इससे ठाकुर प्रतापसिंह उसीको अपने घर लेगये। ठाकुर साहबका
लड़का निरा मूर्ख था वह किसी परीक्षामें भी पास नहीं हुआ।
परन्तु लड़केके क्षत्रिय बनजानेसे बेचारा धोबी बड़ी विपदमें था
उसने हाथ जोड़कर गुरुलोगोंसे कहा कि मैंने आपके यहां पढ़ा
कर अपना लड़का ही खोया। अब घर जाकर धोबिनको क्या
उत्तर दूंगा। आप कृपा करके ठाकुर साहबका निकम्मा

लड़काही मुझे दे दीजिये। इसीप्रकार अपना लड़का खोकर और क्षत्रियके लड़केको साथ लेकर धोबी बेचारा उदास मनसे अपने घर आया।

इसीप्रकारकी कष्ट कल्पनाएं स्वामी दयानन्दजीने अपनी पोथीमें भारतवर्षका वर्णाश्रम मिटानेके लिये की हैं परन्तु अभी तक स्वामीजी की ऐसी आशा जो कुछ पूरी हुई है वह भी अविदित नहीं है और आगे जो कुछ होगा वह भी अविदित न रहेगा। जातिभेद इस विश्व ब्रह्माण्डमें पांव पांव पर लक्षित होता है। जातिभेदसेही यह संसार बना हुआ है। आदिहीमें ईश्वरने पांच भिन्न भिन्न तत्त्व बनाकर सृष्टिकी नींव डाली। हिन्दुओंने इसे प्रकृत रूप पर समझ कर बड़ी सुन्दर रीतिसे जाति भेदको बनाये रखा है। जो लोग जातिभेदको नहीं मानते हैं उनमें भी जातिभेद है परन्तु हिन्दुओंकी भांति नियमित और सुश्रृङ्खल रूपसे नहीं। यूरोपके देशोंमें भी जातिभेद है। वहां धनियोंकी अलग जाति है और दरिद्रोंकी अलग। राजपरिवारके लोगोंकी और साधारण लोगोंकी और जाति है। परन्तु अवस्था बदलनेसे उक्त देशोंमें जाति बदल जाती है। जूता बेचनेवाला बहुत धन कमालेनेसे बड़े आदमियोंमें शामिल होजाता है। इसीतरह बड़े आदमी निर्धन होनेसे नीचे लोगोंमें जामिलते हैं। भारत वर्षमें आकर कृस्तान पादड़ी यहांके जातिभेद पर बहुत कुछ ताना मारा करते है और दुहाई दिया करते हैं कि मसीहाके मजहबमें मनुष्यमात्र एक हैं न कोई ऊंचा है न कोई नीचा। परन्तु बड़ी दिल्लगी यह है कि गोरे पादड़ी अधगोरोंसे घृणा करते हैं और जो काले कृस्तान हैं उनको तो फजीहतका ठिकानाही नहीं। सबके कबरस्थान अलग अलग है। केवल जीते जी ही गोरे कृस्तान काले कृस्तानोंसे घृणा नहीं रखते हैं वरंच मरने पर भी वह काले कृस्तानोंको अपने कबरस्तानोंमें गड़ने नहीं देते। हम ऐसा लिख

कार कर्म्मानोंकी निन्दा नहीं करते हैं केवल यही दिखाते हैं कि जातिभेद कहांतक स्वाभाविक है।

भारतवर्षमें सब जातिके लोग अपना अपना खानपान अलग रखते हैं और अपनी अपनी जातिके लोगोंहीमें विवाहादि सम्बन्ध करते हैं। ब्राह्मणोंसे लेकर अन्त्यज तक इसी नियम पर चलते हैं। यहांतक कि जिन लोगोंने हिन्दू धर्म्म छोड़ दिया है वह भी अपना जाति गुण नहीं भूले हैं। मुसलमान बादशाहोंने बहुतसी जातिके हिन्दुओंको बलपूर्वक मुसलमान बना लिया था। वह मुसलमान होगये परन्तु उनका जातिभेद अबभी बना हुआ है। यहांतक कि कितनेही लोग तो गोत्र तक भी मानते हैं तेली नाई धोबी कुम्हार जाट रांघड़ आदि कितनेही प्रकारके मुसलमान अपने असली धर्म्मसे मुसलमान भी बनालिये गये हैं तथापि वह लोग अपनी अपनी जातिहीके लोगोंमें विवाह आदि सम्बन्ध करते हैं। यह नहीं कि मुसलमान सक्का मुसलमान तेलीकी लड़कीको ब्याह लावे और मुसलमान तेली मुसलमान नाई की लड़कीको ब्याह लावे। पीढ़ियोंसे यह लोग मुसलमान हुए हैं परन्तु अबतक तेली तेलीही कहलाते हैं और धोबी धोबीही।

हिन्दुस्थानमें आकर अरब ईरानसे आए हुए मुसलमानोंने भी हिन्दुओं की देखादेखी जाति विचार रखना आरम्भ किया था, खाने पीनेमें सब एक होने पर भी मुगल मुगलके यहांही विवाह शादी करता था और सय्यद सय्यदके यहांही। अबतक भी यह बात बनी हुई है। जो लोग सब जातिके लोगोंको एक किया चाहते हैं या सबको एक कुण्डमें खिलाया चाहते हैं वह बहुत भूलते हैं। हिन्दुओंने जातिभेद मनुष्यजाति की उन्नतिके लिये बहुत सोच विचार कर रखा है। आमका आमकी श्रेणीमें रखा है और बबूलको बबूलकी। घोड़ोंको घोड़ोंकी श्रेणीमें रखा है और बैलोंको बैलोंकी। जातिभेद होनेसे ब्राह्मण विद्यामें उन्नति

करते थे, क्षत्रिय अस्त्रविद्यामें, वैश्य व्यापारमें और शूद्र सेवामें। जातिभेद होनेहीसे एक आदमी दूसरेके पेशेको छीन नहीं सकता। कारीगरका लड़का कारीगरीहीमें उन्नति करता है और जुलाहेका पूत कपड़ा बुननेमें। सबके पेशे रक्षित थे, सब अपने पेशेमें स्वाधीन थे। वैश्य जिसप्रकार अपनी दुकान पर बैठ कर स्वाधीनतासे व्यवसाय करसकता था जुलाहा उसीप्रकार स्वाधीनतासे अपने घर बैठ कर कपड़ा तय्यार कर सकता था। सब अपने अपने कारोबारमें स्वाधीन थे अबतकभी यह दशा भारतवर्षमें बहुत कुछ बनी हुई है परन्तु अब बिगड़ती जाती है और हरेक पेशेके लोग रोजगारके लिये जहांतहां भटकते फिरने लगे हैं।

एक बात बहुत विचारने की है। हिन्दुओंने जो जातिविचार रखा और वर्ण व्यवस्था पर दृढ़ रहे तो आजतक भी उनका रक्त मांस शुद्ध बना हुआ है। हजारों वर्ष बीत गये आज भी ब्राह्मणके शरीरमें ब्राह्मणहीका रक्त है। वैश्य बतासकता है कि सैकड़ों पीढ़ीसे उसके माता पिता वैश्यही चलेआते हैं। संसारकी और जातियोंकी यह दशा नहीं है। उनमें कितनेही खून मिल गये हैं। एक जातिके मनुष्यके दूसरेके साथ भोजन करनेसे उनके गुण दोषोंका परस्पर परिवर्त्तन होता है एकके गुण दूसरेमें आजाते हैं भोजन विचार रखकर हिन्दुओंने भिन्न भिन्न जातिके गुणोंकी भी बहुत अच्छी रक्षाकी है। जो लोग आत्मविचार और सात्विक भावोंकी ओर चलते हैं उनकी समझमें धीरे धीरे आता जाता है कि बहुत जातिके मनुष्योंका एक साथ खाना अच्छा नहीं है और हिन्दुओंके भोजन विचारसे बड़ी भारी पवित्रता पृथिवी पर फैली है तथा बड़ी भारी पवित्रता की उससे शिक्षा मिलती है।

———o———

# वर्त्तमान भाव।

हिन्दुओंकी वर्त्तमान अवस्था देखनेसे विदित होता है कि वर्णाश्रम धर्मकी मर्य्यादा और समाजका बन्धन अब दिन पर दिन ढीला पडता जाता है। ब्राह्मण गण अपना जातीय व्यवसाय छोड़ते चले जाते हैं। क्षत्रिय लोग राजच्युत होनेसे कङ्गाल होगये हैं और उनको भी जहां तहां भटकना पडता है। वैश्य वाणिज्य करते हैं परन्तु पहिलेकी भांति उनमें उपकार न देखकर अन्यान्य उपायोंसे भी पेट भरनेकी चेष्टा करते हैं। इसी प्रकार शूद्रभी दूसरे दूसरे काम करने लगे हैं। कारण यह कि पुरानी चाल पर चलनेसे अब उनको ठीक ठीक अन्न नहीं मिलता। शरीरकी रक्षाके लिये जिन खाने पीने आदि चीजोंकी मनुष्यको बहुत आवश्यकता है वह सब महंगी होती चली जाती हैं। कहीं कहीं उनका मूल्य दुगुना तिगुना चौगुना हो गया है और कहीं कहीं तो ऐसा हुआ कि जो चीज कभी वहां दो आनेमें आती थी अब वह दो रुपयेमें आती है। अन्न घी दूध चीनी और फल यही भारतवर्षके भोजनकी प्रधान सामग्री हैं। पहिले यह सब बहुत कम परिश्रम करनेसे लोगोंको प्रचुर मिलती थीं अब बहुत परिश्रम करनेसे भी यथेष्ट नहीं मिलतीं। इसीसे अब भगवत् चिन्तनकी जगह अन्नकी चिन्ताही में भारतवासियोंका अधिक समय व्यतीत होता है।

विदेशीय शिक्षा और आचार व्यवहारके गुणसे कई प्रकारके खर्च भारतवासियोंके पीछे लग गये हैं पुराने आर्य्य लोग अपने राजाओंके आश्रित रहकर प्रतिपालित होते थे और सबको हिन्दू धर्मके विषयानुसार चलना होता था, सुतरां उनके अपने अपने आचार व्यवहार और व्यवसाय पर कोई दूसरा हस्तक्षेप नहीं कर

सकता था। इसीमें उनका सांसारिक निर्वाह भली भांति हो जाता था। परन्तु अब भिन्न देशीय और भिन्न धर्मी नरेश भारतवर्ष के राज्यशासनके अधिकारी हैं इससे पुरानी लीकभी मिट गई है। अब हिन्दुओंको पुराने धर्मपथ पर चलानेवाला कोई नहीं है। अब हमारे धर्म कर्म आचार व्यवहार सबका औरही रूप होगया है। अब केवल यही चेष्टा हम लोग करते हैं कि किस उपायसे अपना पेट पालें। पहले हिन्दुओंको रुपयेका बहुत लालच न था। कारण यह था कि रोटी कपड़ेका काम अच्छी तरह सस्तेमें चल जाता था। पेट भर जानेके बाद हिन्दूको दूसरे पैसेका उतना लालच नहीं रहता परन्तु अब क्योंकि महंगा हो जानेसे उन लोगोंको रुपयेकी भूख भी बहुत बढ़ गई है। अब नीचसे नीच कर्म करके भी हिन्दू रुपया चाहते हैं। रात भरमें धनवान होनेकी लालसासे देशमें चोरी बेईमानी जालसाजी जीवहत्या आदिका स्रोत इतना प्रबल हो गया है कि उसका निवारण करना कठिन है। इसीसे नये नये कानून बनते जाते हैं परन्तु वह कानूनभी इस स्रोतको रोकनेमें समर्थ नहीं होते इसीसे जल्दी जल्दी नया रूप बदलते रहते हैं। एक अर्थ लालसामें पड़कर देश तबाह हो रहा है। क्या यह सब देखकर भी विचारवान कहेंगे कि समाजबन्धन बुरा है? पुराने आर्य्यगणने जितने ऊंचे विचारसे यह जातिबन्धन दृढ़ किया था आज उसके समझनेवाले भी नहीं हैं। जब तक वह बन्धन रहा हिन्दू जाति बहुत सुखी रही अब वह ढीला हो गया इसीसे दुःख विराजमान है।

जब समाज बन्धन था तो सब जातिके लोग अपना अपना काम करते थे, सब अपने अपने व्यवसायमें लगे हुए थे, सबका एक दूसरेसे काम पड़ता था; सब चीजें सुन्दर मिलती थीं, सब द्रव्य सच्चे और बिना मिलावटके होते थे। बनावटी और मिलावटी चीजोंसे उस समयके लोग बड़ी घृणा करते थे परन्तु आजकल झूठी

और नकली चीजोंका ही बड़ा आदर है असल और नकलके पहचानने की बुद्धिभी लोगोंमें नहीं रही। पहिले प्रयोजनकी वस्तुही लोग लेते थे अब प्रयोजनके पहचाननेकी शक्ति आखोंमें नहीं रही। नाना प्रकारकी विदेशी चीजें देखकर लोगोंकी आखोंमें चकाचौंध लग जाती है और वह अनाप शनाप जो चीज चाहें खरीद लेते हैं। बहुत लोग समझते हैं कि पहिलेसे अब कारीगरी बहुत बढ़गई है इसमें इस समयकी कारीगरीकी चीजोंसे घर भर लेना चाहिये। सच है काचमें जितनी चमक है कांचनमें उतनी नहीं है। काच अपनी चमकसे मणि माणिक्यकी शोभाको भी दबा देता है अत तुम्हारा दोष क्या है? बटोरो तुम खूब काच बटोरो अपना घर गिलास हांडी झाड फानूस और शीशेके टुकड़ोंसे भर लो। कुछ दिन इनकी शोभा देखो परन्तु स्मरण रहे—जब यह टूट फूट जायगी तो इनसे शरीरमें गड़ने और हाथ पांवको काटनेके सिवाय और कुछ लाभ न मिलेगा। यह सब चीजें बिना कौड़ी पैसे तुम्हें घरसे बाहर फेंकना होंगी। यही आजकल की शिल्पकी उन्नति है।

जो कुछ शिल्पकी उन्नति आजकल देखनेमें आती है उसे देख कर यही कहना पड़ता है कि असली और प्रकृतिम पदार्थका अब आदर नहीं है। जितनीही नकली चीजें बनाइ जाती उतनाही उनका आदर है। निरालेसे निकृष्ट गन्दोंसे गन्दी और घृणितसे घृणित हतिया बनानाही आजकलका परम ध्यान है। ऐसे कामोंमें जिसकी बुद्धि जितनीही तेज होगी उतनीही उसकी इज्जत होगी वर्त्तमान जगतमें सचका आदर नहीं। धर्म कर्ममें भी आज कल छलमात्र और नकली चमक दमक दरकार है। मर्म्म तो सीन अब दुर्लभ है। परन्तु इतनी बड़ी नकलीको पाकर विज्ञान प्रसन्न नहीं है यह औरभी आश्चर्यकी बात है। इस समयके विज्ञानराज कभी कभी अपने आपकी गढ़ी जगतमें दवादि

हिन्दुस्तानकी असली और सच्ची कारीगरीकी ओर जा निकला करते हैं। उसे देखकर कुछ देरके लिये उनका वह नशा उतर जाया करता है और बुद्धि चक्करमें पड़ जाया करती है। परन्तु हे आजकलके विज्ञान! मुग्ध मत हो। समझ कि पृथिवी पर जबतक असल है तबतकही तेरी नक़लको आदर है। परन्तु एक दिन तेरी कृपासे पृथिवी नक़लसे परिपूर्ण होजावेगी। तब लोग समझेंगे कि तुझसे संसारका उपकार हुआ या अपकार!

कालकी विचित्र गति है। जिन ब्राह्मणोंके चार पदार्थ करतल गत थे जो मोक्षके मालिक थे आज उनका आचार व्यवहार देख कर छाती फटती है। जो हीन दशा हिन्दुओंकी होती जाती है उसे देख कर यही आशङ्का होती है कि कहीं एक दिन यह असारत्वसे परिपूर्ण होकर खोखले की भांति फेंक देनेके योग्य न होजावे। जाति, धर्म्म, कर्म्म और अच्छे गुण खोकर हिन्दू अब सर्व्वत्र यथेच्छाचारी होते जाते है।

"पंथसोही जाके मन भावा। पण्डित सो जो गाल बजावा॥"

की कहावत पूरी होरही है। जो अधिक बक सकता है अधिक गप्प मार सकता है वही समाजका नेता बन जाता है। कुशल इतनीही है कि हिन्दूधर्म्म चलाने वालोंने इसकी जड़ें बहुत दृढ़ रखी थीं इसीसे यह पूर्णरूपसे हिलकर गिर नहीं पड़ता है। जो अवस्था इस समय वर्त्तमान है इसकी बहुत काल पहले हमारे त्रिकाल दर्शी ऋषि मुनियोंने खबर दी थी। धर्म्म कर्म्मके साथ आयु बल वीर्य्य आदिका ह्रास भी भलीभांति होरहा है। पहलेकी अपेक्षा सब बातोंमें हमारी हीनताही होनता है। जब हिन्दू धर्म्म जीवनके लिये इस समय सन्ध्या उपस्थित है तो ऐसे दारुण समयमें भी कुछ धीरता आसकती है; क्योंकि जहां सवेर है वहां दोपहर है और दोपहरके पीछे सन्ध्या है। परन्तु लोग पहचानते नहीं यही दुःख है।

आजकल जो कुछ शिक्षा हिन्दुओंको मिल रही है वह बड़ीही भयानक है। शीश महलमें जो दशा बन्दरकी होती है वही दशा इस समयकी शिक्षासे हिन्दु सन्तानकी होरही है। बन्दर शीश महलमें घुसा हुआ जिधर देखता है उधरही उसे एक बन्दर दिखाई देता है। उसके दांत निकालनेके साथ कितनेही बन्दर दांत निकालते दिखाई देते हैं और जब वह उछलता है तो वह भी उसीप्रकार उछलते हैं। ठीक इसीप्रकारकी दशा मनुष्योंकी आज कलकी पोथियां पढ़कर होगई है। लोग अपने आपको भूल गये और प्रतिबिम्बको पकड़ते फिरते हैं। आत्मोन्नतिके पथ पर ले जानेकी कोई बात आजकलकी शिक्षामें नहीं है। केवल बाहरी आडम्बर यह सिखाती है। इसीसे कुछ लोग आजकलकी शिक्षाको कमाखानेकी शिक्षा कहते हैं। यह ठीक भी है कि आजकलकी शिक्षासे कुछ लोगोंको रोटियां अच्छी मिली हैं। नौकरी करके बहुत लोग नई शिक्षाके बलसे रुपया कमाने लगे हैं। परन्तु सबको इससे रोटीभी नहीं मिलती। बहुत लोग इस शिक्षाको पाकर भी भूखे भटकते हैं और बहुत लोग अपना पुराना रोजगार और गाठका पैसा भी इसके लिये खोबैठे हैं। धर्महीनताकी यह शिक्षा जड़ है। बहुत लोगोंको इसने स्वधर्मसे खोया है। बहुतोंके चित्तको डगमगा दिया है वह कभी किसी धर्मकी ओर दौड़ते हैं और कभी किसीकी ओर। कुछ लोग ऐसेभी हैं कि जो धर्मके नामहीको ढकोसला समझने लगे हैं वह समझते हैं कि दुनियामें धर्मका बखेड़ाही वाहियात है।

परन्तु बड़ी कठिनाई यह है कि धर्मही मनुष्यकी मूर्त्ति है। धर्मसे जातीय आचार व्यवहारका पता लगता है। धर्महीसे यह पहचाना जाता है कि अमुक मनुष्य किस श्रेणीका है। जो कलमा पढ़ता है और मुसलमान मजहबमें चला गया है उसका नाम भी मुसलमानोंही जैसा हो जाता है और उसकी शकल सूरतभी

उसका मुसलमान होना प्रकाश करती है। इसी प्रकार क्रस्तान अलग पहचाना जाता है और यहूदी अलग। हिन्दूको देखतेही विदित हो जाता है कि वह हिन्दू है। परन्तु यह धर्मके पीछे लाठी लेकर फिरनेवाले लोग कैसे पहचाने जायं ? किनमें इनकी गिनती हो यह बड़ी टेढ़ी बात आ पड़ती है। और वह क्या कह कर अपना परिचय दें इसका भी बड़ा झंझट उपस्थित होता है। किसी न किसी रूपमें अथवा किसी न किसी धर्म्ममें मनुष्य अपने आपको प्रकाश करताही है। इससे कहीं न कहीं उसे आश्रय लेनाही पड़ता है। और इसकी भी बड़ी आवश्यकता है कि वह जिस धर्म्मका आश्रय लेता है उसके नियमोंका ठीक ठीक पालन करे। अब तक हिन्दुओंने बहुत अच्छी रीतिसे अपने धर्म्मके नियमोंका पालन किया है। इसीसे इस गिरी दशामें भी पृथिवी भरमें उनका आदर है उनकी चर्चा है। लाखों क्रस्तान यूरोप और अमेरिकासे चलकर पृथिवीमें चारों ओर क्रस्तानधर्म्मका उपदेश करते हैं और नाना जातिके लोगोंको क्रस्तान बनाते हैं। मुसलमानोंने भी अपने समयमें खूब मुसलमानी फैलाई थी अबभी वह दस पांचको मुसलमान बनानेसे नहीं चूकते हैं। इतनी भारी चेष्टा करने पर भी उनके धर्म्मकी वैसी चर्चा ऊंचे दरजेके लोगोंमें नहीं होती है जैसी हिन्दूधर्म्मकी होती है। हिन्दू अन्य जातिके लोगोंमें जाकर अपने धर्म्मकी कुछभी चर्चा नहीं करते हैं न दूसरे धर्म्मके लोगोंको अपनेमें मिलाना चाहते हैं। तिस परभी यूरोप और अमेरिका आदिके विद्वान बुद्धिमानोंमें हिन्दूधर्म्मकी बहुत कुछ आलोचना होती है।

जो कुछ हो, हिन्दुओंकी दृष्टिमें धर्म्मसे बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है उनकी सब बातें उनके धर्म्मके साथ जुड़ी हुई है। घरके समाजके तथा ईश्वर सम्बन्धी जितने काम हैं। सब शास्त्रोंके उपदेशानुसार होते हैं; आहार विहार उत्सव अनुष्ठान तथा जीवन

मरण—जितने कामोंमें मनुष्यको लिप्त रहना होता है उन सबकी व्यवस्था ऐसे सुन्दर रूप पर हिन्दूशास्त्रमें लिखी गई है कि उनके अनुसार चलनेसे मनुष्य निश्चयही अपार सुख शान्तिका अधिकारी हो सकता है। परन्तु क्या किया जाय, समयके फेरसे हिन्दू लोग बडीही हीनताको प्राप्त हो गये हैं। अपनी अवस्थाका विचारभी कभी कभी उनके जीमें आता है परन्तु अभी गूढ विचार करनेवाले लोग बहुत अल्प हैं। जब विचारवान लोग विचार कर देखेंगे तो वह जानेंगे कि स्वधर्मसे विचलित होनेही से हिन्दुओंकी आज यह अधोगति है। अबभी यदि सम्हल कर चलना हिन्दू सीखेंगे तो उनकी बहुत कुछ रक्षा हो सकती है।

# धर्म्ममें भेदाभेद।

ईश्वरके जाननेकी इच्छा तथा ईश्वरके प्रिय कामोंमें लगे रहना मनुष्यका एक स्वभाव सिद्ध गुण है। जिसकी जैसी धारणा है जिसका जैसा विश्वास है और जिसकी क्षमता है वह उसी भावसे ईश्वरकी महिमा गाता है और उसकी पूजा करता है। पृथिवीके आदिसे मनुष्य ऐसा करते चला आता है। ईश्वरके जाननेका मूल अधिकार प्रत्येक मनुष्यके अन्तरमें निहित है, परन्तु देशकाल और पात्रके अनुसार उसका स्वरूप अलग अलग है।

उपासनामें साकार निराकार अथवा स्थूल और सूक्ष्मका भेद है। साकारवादी स्थूल उपासक कहलाते हैं और निराकारवादी सूक्ष्म उपासक। उनमें क्रिया दोषसे स्थूलमानभी अति सूक्ष्मत्वको प्राप्त होती है और क्रिया दोषसे सूक्ष्मत्वमें भी जड़त्वका प्रवेश हो

जाता है। उदारता और स्वाधीनताके गुणसे हिन्दूधर्म्म कल्पतरु रूप है जिनको जैसी क्षमता है, जिनको जैसी धारणा है, जैसा विश्वास है तथा जो जैसे ज्ञानके अधिकारी हैं वह उसी भावसे हिन्दूधर्म्ममें प्रवेश कर सकते हैं उनमें से कोईभी हिन्दूधर्म्मके फल लाभ करनेसे वंचित नहीं हो सकता।

साकारवादी लोग ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये जिस प्रकार प्रयासी हैं निराकारवादीभी वैसेही ईश्वरके प्यारे कामोंके करनेके अभिलाषी हैं। भेद केवल इतनाही है कि एक दल अपना चलनेके योग्य मार्ग पहचान कर उस पर चलता है और दूसरा रास्ता तलाश करनेके लिये इधर उधर फिरता है। जहां मार्ग ठीक नहीं है वहां जानेमें अवश्यही पथिकको भटकना पड़ता है। जो लोग किसी एक स्थानमें जानेकी इच्छा रखते हैं और उसके लिये यत्न करते हैं वह किसी न किसी उपायसे वहां पहुंच जाते हैं। परन्तु जो ठिकाना नहीं जानते उन्हें बहुत खराब होना पड़ता है। पृथिवी पर आर्य्यजाति जैसे विशुद्धधर्म्म भूषणसे भूषित थी अन्यत्र कहीं ऐसा निदर्शन देखनेमें नहीं आता। इससे जो धर्म्मके प्यासे हैं उनका हिन्दूधर्म्मसे जो कुछ लाभ हो सकता है वह और धर्म्मसे नहीं हो सकता। हिन्दूधर्म्ममें ऐसा कोईभी अभाव नहीं है जिसके लिये हिन्दूधर्म्मको अन्य धर्म्मका आश्रय लेना पड़े। हिन्दूशास्त्र धर्म्मका वह निर्म्मल भाव बताते हैं कि जिसके हृदयमें एक बार स्थान पानेसे अमृतकी वर्षा होने लगती है। हिन्दूधर्म्मकी जड़ बड़ी दृढ़ है इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसका अधिकार तत्त्व ऐसा सबके बोधगम्य है कि इसमें प्रवेश करनेसे किसीको कुछभी बाधा नहीं होती। जिसकी जैसी शक्ति है वह उसीके अनुसार इस धर्म्म पथ पर चल सकता है। यदि इस धर्म्म पथ पर चलनेकी मनुष्यकी इच्छा रहे तो कोई ऐसी बात नहीं है जो उसकी इच्छाके अनुसार पूरी न हो। इस धर्म्मके इसी महत्वके कारण हिन्दुओंमें

भिन्न भिन्न सम्प्रदाय हैं। भारतवर्षमें ऐसा कोई स्थान नहीं है जहांके लोगोंने किसी न किसी प्रकारका धर्मभाव ग्रहण न किया हो। भारतवर्षके मूर्खसे मूर्ख और गवारसे गवार लोग भी धर्मच्युत नहीं हैं। घोर वनमें जाइये वहां सामान्य घास-फूसकी झोपड़ियोंमें जो कोल भील आदि रहते हैं, उनमें भी धर्मभाव मौजूद है।

जिस देशमें सब बातोंकी उन्नति होती है उसीमें धर्मकी भी उन्नति होती है। आजकल इङ्गलैण्ड अमेरिका जर्मनी आदिमें जिसप्रकार सब बातोंकी उन्नति है उसीप्रकार धर्मकी भी उन्नति है। इसीकारण उक्त देशोंसे पादड़ियोंकी खेप जहाजपर पहुंच कर ईसा मसीहका धर्म फैलाती है। भारतवर्ष इस समय अवनत दशामें है इसीसे उसके धर्मकी दशा भी बहुत गिरी हुई है। परन्तु इस गिरने पर भी, इसमें इतना धर्मभाव मौजूद है कि किसी विदेशी धर्माभिमानीसे कुछ सीखनेकी उनको जरूरत नहीं है। हमारे पादड़ी साहब इस देशके लोगोंको धर्म सिखाने आते हैं परन्तु यदि वह धर्मकी ओर ध्यानसे देखते, तो भारतवर्षके मूर्खसे मूर्ख और जङ्गलीसे जङ्गली लोगोंमें भी अपनेसे अच्छा धर्म पाते। धर्मके साथही हिन्दूका जन्म है और धर्मके साथही हिन्दू मर जाता है। जिस भारतवर्षमें ऐसे लोग बसते हैं उन्हें पादड़ी साहब क्या धर्म सिखासकते हैं? जिस देशके लोग मांस नहीं खाते, मदिराको नहीं छूते, सब प्रकारके तामसी कामोंसे दूर रहते हैं उनको मद्य मांसके दिनरात सेवन करनेवाले देशोंके उपदेशक क्या धर्म सिखासकते हैं? हमने सुना है कि यूरोप और अमेरिकाके लोगोंको भी इस बातकी खबर होगई है, कि मद्य मांस आदि तामसी भोजन धर्मके कामोंमें बाधा डालते हैं। इसीसे बहुत लोग वहां भी मद्य मांसको त्यागने लगे हैं। इस गिरीदशामें भी भारतवर्षके धर्मभावसे यूरोप और अमेरिका आदिके

सभ्यताभिमानी लोग धर्म्मभाव सीखते हैं। यह भारतवर्षके लिये बड़ेही गौरवकी बात है। साथही यह बड़े दुःखकी बात है कि ऐसे भारतवर्षके लोग भी पराये धर्म्मभावकी ओर डावांडोल होते हैं।

हिन्दूधर्म्ममें जन्म लेकर किसीको पराये धर्म्मकी सहायता लेनेकी क्या आवश्यकता है। हिन्दूधर्म्मको छोड़कर दूसरे धर्म्मकी सहायता लेना अच्छी सुन्दर निर्म्मल ज्योति वाली आंखों पर पत्थर बांधना है। चश्मेकी झलक पर मत रीझो। कांचकी चमक ज्योति नहीं है। ज्योति तुम्हारी आंखोंही की काम आती है। अच्छी आंखों पर चश्मा लगाना आंखकी ज्योतिको एक दिन कम कर देता है। इसी प्रकार पराये धर्म्मकी झलकभी तुम्हें अन्धकारही में ले जावेगी। यदि जुगनू चमक कर रातका अन्धेरा दूर कर सकते तो पूर्णचन्द्र पर कौन मोहित होता? यदि सचमुच धर्म्म चाहते हो तो हिन्दूके घर जन्म हुआ है फिरभी तुम अन्यत्र धर्म्म तलाश करते हो क्यों?

सैकड़ों वर्ष हिन्दु-धर्म्मने मुसलमानी शासनके धक्के सहे। उस समय इस पर बड़ी विपद आई। लाखों हिन्दू जबरदस्ती मुसल-मान कर लिये गये। परन्तु वाहरे हिन्दू-धर्म्म! उन धक्कोंको सह कर तू अब तक जीता है! संसारमें जो देश एक बार अन्य धर्म्मावलम्बियोंके हाथमें चला गया उसका धर्म्मभी चला गया। केवल भारतवर्षही ऐसा देश है जो इस प्रकार विदेशियोंके धक्के सहकरभी अपना धर्म्म बचाये हुए है। मुसलमानोंकी जबरदस्तीके बाद अङ्गरेजी राज्य आया। इसमें धर्म्म सम्बन्धी जबरदस्ती तो कुछ नहीं है पर पादड़ी साहबोंकी प्रगल्भता बहुत कुछ है। पादड़ियोंके उपदेशसेभी आरम्भमें कुछ लोग बहके। स्वधर्म्म छोड़ कर क्रस्तान बने। परन्तु बहुत जल्द वह प्रवाहभी रुक गया। लोगोंकी समझमें आने लगा कि जो कुछ हिन्दू धर्म्ममें है वह क्रस्तान धर्म्ममें नहीं है।

अधिक क्रस्तानी अगरेजी पढे बङ्गालियोंमें फैली थी। उसे राजा राममोहन रायने कुछ उपनिषद और वेदोंके वाक्योंसे उड़ा दिया। राजा राममोहनरायने उन्हीं वाक्योंकी व्याख्यासे पादड़ियोंके वह बुरे उड़ाये, कि उनसे उत्तर देते न बना। परन्तु राममोहनरायने हिन्दूधर्म्ममें कुछ उलट पलट करके अङ्गरेजी पढे बङ्गालियोंकी रुचिका पन्थ तराश दिया था। फल यह हुआ कि उनके चलाये धर्म्मकी भी एक नई शाखा खडी हो गई। अर्थात् हिन्दुओंमें भी क्रस्तानी नकलकी एक जाति बन गई।

जो ब्रह्मज्ञान सबके हृदयमें विराजमान है उसकी खोजके लिये मनुष्य भिन्न भिन्न धर्म्मोंमें भटकता है। परन्तु अन्तरकी शुद्धि बिना यह सब हो नहीं सकता। इसके लियेभी एक हिन्दूधर्म्मही है जिसने मार्ग साफ कर दिया है और "योग" निकाला है। गीतामें परम योगीश्वर भगवान कृष्णचन्द्रने अर्ज्जुनको "योग तत्व" भली भांति समझाया है। योगसे जब मनुष्यका हृदय शुद्ध हो जाता है और उसे ब्रह्मलोक सूझने लगता है, तब तक वह नहीं सूझता मनुष्य बाहिरी बातें बनाता है। परन्तु जब बाहिरी बकवासका अन्त करके भीतरी काममें मनुष्य लगता है तो उसका मोह छूटने लगता है। फिर उसे बाहिरी बातें बुरी लगने लगती हैं। परन्तु जो मतके मतवाले हैं और कुछ ऊपरकी गाल बजाई करके दूसरोंको अपने मतमें लाया चाहते हैं समझ लो कि वह धर्मसे दूर हैं। धर्म उनके पाससे भी नहीं फटका।

धर्मपथ छोडकर जो लोग इधर उधर भटकते हैं, वह स्थान नहीं पाते। क्योंकि पथ पर पड़नेसे किसी न किसी प्रकार मनुष्य ठिकाने पर पहुंच सकता है। पर विपथ चलनेसे न जाने कहांका मारा कहां चला जावे। इसीसे गन्तव्य पथ ठीक होना चाहिये। जिस प्रकार आंखोंसे अन्धेरा और अन्धेरा दोनों पर नहीं दिखाई देता इसी प्रकार नाना प्रकारकी आंधियोंने हिन्दूधर्म्मको

अच्छादित कर लिया। पथ लोगोंकी दृष्टिसे बाहर हो गया है। परन्तु उनको विचलित न होना चाहिये। गुबार बैठ जाने दो पथ दिखाई देगा। सावधान हो! ऊपरी बातोंको देखकर मत ललचाओ। यही नरतन सर्व्वव्यापी भगवानका विहार निकेतन है। इसीके द्वारा तुमको ब्रह्म मिलेगा। अपने धर्मके इस उपदेश को मत भूलो तुम्हारा यह शरीर विषयवासनाके लिये नहीं है। अपने धर्मके चलाये पथ पर चलकर स्थूलताको कम करके सूक्ष्मता की ओर ध्यान दो। बोझा फेंके हलके बनो। आगे तुम विलक्षण लीला देखोगे। बिना पांव चलने, बिना हाथ काम करने, बिना आंखोंके देखने और बिना कानोंके सुननेकी शक्ति तुम्हें मिलेगी। बिना पर तुम उड सकोगे और बिना सवारी हवाकी भांति हजारों कोस बातकी बातमें पहुंच सकोगे। घरके मोतियोंका खजाना भूल कर पराये पत्थर क्यों बटोरते हो।

जब जिस जातिकी हीनावस्था होती है तो पहले उसके धर्मकी जड़ पर कुठार पड़ता है। हिन्दूधर्म्मकी वही दशा है। हिन्दूधर्म्म बहुत दिनसे हीनता भोगता हुआ जीता है। परन्तु इसमें कुछ ऐसी शक्ति है जो इसे जीता रखती है नहीं तो कभीका मिट जाता। बौद्ध, मुसलमान, क्रस्तान आदिके प्रबल आक्रमणोंसे बच कर भी यह जीवित है। कोई इसके सिर पर नहीं तबभी यह जीवित है। जन्मसे लेकर मरण प्रयन्त अबभी हिन्दू लोग सब धर्म्म संस्कार करते चले जाते हैं। अबभी हिन्दुओंके मेले ठेले पर्व्व तीर्थ उसी प्रकार चलते हैं। पर्व्वोंके अवसर पर लाखों हिन्दू स्वयं चले आते हैं क्या कोई उन्हें बुलाने जाता है? केवल धर्म्मभ.वही उनको लिये फिरता है।

आज कल जो हिन्दुओंमें दो एक नये दल खड़े हुए हैं उनका बाहिरी काम तो बहुत टीप टापका है परन्तु भीतरसे वह क्या हो रहे हैं यह देखनेकी बात है। एक ओर तो वह अन्य जातिके

लोगोंको अपनी ओर घसीट कर अपने तुल्य बना रहे हैं। दूसरी ओर माता पिता और सगे सम्बन्धियोंको कोसों दूर भगा रहे हैं। ठीक कस्तानी ढङ्ग पर अपना चाल चलन बना रहे हैं। जिन पिता माताने पैदा किया और पाला पोसा है उनका गुण एक बार भूल कर उनके विरुद्ध चलना अथवा उनको मूर्ख आदि कहना गृहस्थ जीवन की मर्य्यादाको खण्डन करता है। स्मरण रखो कि जितनाही पराये आचार व्यवहारकी ओर दौडोगे उतनाही अपना आचार व्यवहार ढीला करोगे तथा उतनाही कष्ट तुम्हारा बढेगा। एक हिन्दुजीवनही ऐसा है जिसमें बहुत अल्पसे भी शान्ति पूर्व्वक निर्व्वाह होसकता है। हिन्दूही थोडेमें सन्तुष्ट और सब विपदोंका झेलनेके योग्य है। इस चालके बने रहनेहीसे अबतक हिन्दू धर्म्म रक्षित रहा और आगेकोभी रहेगा। परन्तु चाल चूकनेसे सदाके लिये भटकना और पछताना होगा।

---

# परलोक तत्व।

पहले कहचुके हैं कि मृत्यु केवल जीवका दूसरा स्थान बदलना है और कुछ नहीं है। एक शरीरके छूटनेसे जीव कर्म्मानुसार अन्य शरीर पाता है। पुरुष जिसप्रकार चलते समय अगला पाव जमाकर पिछला हटाता है इसीप्रकार जीवभी नये शरीरमें आनेके लिये पुराना शरीर छोडता है। गीतामें खूब कहा है कि मानो पुराने वस्त्रको त्याग कर नये धारण करता है।

जीव और उसको आत्मा नहीं मरती मरता है शरीर। जब रोगकी पीड़ा असह्य होजाती है नाना प्रकारके दुःख शोकसे शरीर

जीर्ण होजाता है तब मृत्यु आकर उस कष्टको मिटाती है। ऐसा कष्ट काल उपस्थित हुए बिना मृत्यु नहीं दर्शन देती। मृत्युसे क्या डरते हो मृत्युही परम बन्धु है। शरीरका कष्ट जब वह अब देख नहीं सकती तो आप आकर उसे दूर करती है। अतः मृत्यु ईश्वरके अधीन है। जिसने जन्म लिया है वह एक दिन मरता भी निश्चय है। यद्यपि मृत्युके साथ इस शरीरका नाश होजाता है, परन्तु जीवका अस्तित्व बना रहता है। जड़का नाश स्वाभाविक है इसीसे शरीरका नाश होता है। जीव और आत्मा चैतन्य हैं इसीसे उनका ध्वंस नहीं होता।

कुछ लोग कहते हैं कि मौतही अनर्थका मूल है यह न होती तो किसीको बुढ़ापा न आता सब आनन्दसे रहते। परन्तु जिस ईश्वरकी इच्छासे जीव जीवन और आत्मा आकर मिलते हैं उसीकी इच्छासे मृत्यु भी आती है। मृत्यु भी परम मङ्गलके लिये है। यह न होती तो लोगोंके शोक क्लेश दुःखका कहीं पार न रहता और मनुष्य आप अपना गला काटनेको उद्यत होते अथवा स्वयं मनुष्य जीते मनुष्योंको भूमिमें दबा देनेकी चेष्टा करते। इस मृत्युहीकी कृपासे संसार चलता है और उसके नियम भङ्ग नहीं होते हैं जो भावी सुखकी ओर ध्यान रखते हैं उनके लिये मौत परम प्यारी और उन्नतिकी सीढ़ी है। वह उससे नहीं डरते। डरते वही हैं जो इस संसारके क्षणभङ्गुर सुखोंमें फंसकर शरीरका नाश कर रहे हैं। संसारमें फंसे लोग मनमाने सामान पानेसे कुछ सुखी होते हैं परन्तु विचारवान लोग ऐसे सुखोंको परित्याग करके दूसरेही सुख तलाश करते हैं। विषयी और विवेकीके सुखमें बड़ा भेद है। विषयीके सुखमें रोग शोक जरा मृत्यु आकर कष्ट देते है। विवेकी लोग विषयसे निर्लिप्त रहकर समस्त कष्टोंसे परित्राण पाते हैं। जहां भोग है वहीं भय और रोग है। कोई केवल धन बटोरता है और केवल अपने शरीरको सजाता है काल

अनुचित पान भोजन और अनुचित कामोंमें लगा रहता है। इन सबहोंमें उसे शोक तापका सामना करना पड़ता है। रुपया न होनेसे होनेको चिन्ता रहती है और होनेसे उसके चोरी चलेजाने व्यवहारमें घाटा होनेका भय होता है। इससे स्पष्ट है, कि विषयासक्तिमें सुख नहीं है। इसीसे विवेकी लोग इन सुखोंमें मन नहीं लगाते और न कष्टको कष्ट मानते हैं।

सच्चा सुख आदमीको सदा मिल सकता है। जो लोग सुखके समय दुःखकी यंत्रणा और दुःखमें पड़ कर सुखका आनन्द लेते हैं, वही सच्चे सुखके अधिकारी हैं। किस सुखमें क्या अवनति या उन्नति है अथवा दुःखमें भी कैसे सुख उपभोग किया जा सकता है जब तक मनुष्य यह नहीं जान लेता तब तक उसे सम्यक ज्ञान नहीं होता। जो अवनतिका क्लेश भोग उन्नतिकी ओर फिरता है वही ज्ञानी है।

अवनति ठीक इसके विपरीत है। विषयासक्त पुरुष अवनतिके गढ़ेमें गिरता है। यदि वह उस गढ़ेकी तरफ चल पड़े तो उसकी खराबीका ठिकाना नहीं। वह ज्यों ज्यों आगे जाता है पापपङ्कमें डूबता जाता है यहां तक कि फिर उसे उठनेकी शक्ति भी नहीं रहती। यहां अवनति और उन्नतिको जरा खोल दिया जाता है। जो काम परिणाममें बुरे हैं जिनमें असन्तोष और ग्लानि उत्पन्न होती है वही सब अवनतिके हैं और जिन कामोंसे आत्मा प्रसन्न होती है तथा जिनका भावीफल शुभ हो वही उन्नतिके हैं। उन्नतपथमें जो मरता है वह मृत्युको भी अमृतधाममें लेजानेवाली समझता है। उसको मौत फूलसी जचती है। इसी प्रकार विषयासक्तको मृत्यु भीषण और भयङ्कर जान पड़ती है। यह विषय वासनाही मनुष्यको आंखें रहने परभी अन्धा बना देती है। नहीं तो सब प्रत्यक्ष देखते हैं कि मनुष्य इस संसारमें आकर कुछ दिन इधर उधर दौड़ धूप करता है। पीछे अचानक मौत उस

इस प्रकार दबोच लेती है जैसे बिल्ली चूहेको। इतना खुले तौर पर देखनेसे भी मनुष्यकी आंखें खुली नहीं रहती। वह फिरभी समझता है कि मैं तो बहुत दिन जीऊंगा। सदा विषय भोग करूंगा। परन्तु भूलो मत! विषयभोग अनित्य है! दुःखका मूल है! अवनतिकी ओर लेजाने वाला है।

विषयासक्तको मृत्युके समयका भय और कष्ट बहुत भारी होता है। एक तो वह उत्कट रोगकी यन्त्रणा भोगता है, फिर उसके जोमें नाना प्रकारके निराशासे भरे हुए विचार उठते हैं। जब तक उसका प्राण इस दशामें अटका रहता है वह विषयोंहीकी आलोचना करता है, कि हाय! सारी उमर खोटे कामोंहीमें खोई। अब मौत प्राण लेती है। शरीर निस्तेज होरहा है मृत्युमें देर नहीं! विषय विभव स्त्री पुत्र कन्या भाई बन्धु अब कौन साथ दे सकता है। जिनके लिये इतना कष्ट पाया जिन चीजोंकी इतनी रक्षा की वह सब अब छूटती हैं। कोई ऐसी चीज साथ न ली, जो आगेकी साथी बनती! क्या होगा!

परन्तु अच्छे लोगोंका मुख मरणकालमें भी कमलसा खिला हुआ होता है। उनकी निर्म्मल कान्ति देखकर पापियोंका भी पाप दूर होता है और उनको मनमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। उनकी खुली आंखोंसे ऐसी ज्योति निकलती है, कि मानो इस संसारकी किसी चीजकी ओर ध्यान न करके वह अमृतलोककी तरफ ताक रही हैं। दोनों हाथ वक्षस्थल पर ऐसे शोभायमान होते हैं, कि मानो हृदयमें रहनेवालेको पाकर गाढ़ आलिङ्गन कर रहे हैं। उस समय उसके अधः अङ्गका तेज उत्तम अङ्गकी ओर जाता है। धूम्राकारमें ब्रह्मरन्ध्रसे निकल कर आकाशकी ओर जाता है। यही तेज जीवका जीवत्व है। लोहेकी एक शलाकाको तपानेसे जिस प्रकार अग्निका तेज लोहेके अंशोंमें प्रवेश कर जाता है इसी प्रकार जीवभी शरीरमें जाकर सर्व्व शरीरमें विकाश पाता है। मनुष्यकी

मृत्युके साथ जब जीव अपना तेज समेट कर ऊपरको जाता है तब शरीरमें उष्णताका गुण नहीं रहता। जिस तेजसे शरीर चैतन्य था तब वह वैसा नहीं रहता।

प्रतिजन्ममें जीव मृत्युदशा लाभ करता है। यद्यपि सबकी मृत्यु समान नहीं होती मृत्युके यन्त्रणादायक होनेमें कुछ सन्देह नहीं। जीव शरीरको त्यागकर पहले जिस लोकमें जाता है उसका साधारण नाम परलोक है। सब जीव एक निर्दिष्ट लोकमें जाकर सम्मिलित होंगे ऐसा कोई कारण नहीं है। जिसकी जैसी क्षमता है वह वैसेही लोकमें जाता है। संसारमें जैसे कितनेही नगर गांव हैं परलोकमें भी वैसेही भिन्न भिन्न लोक हैं। मनुष्य अपने कर्मोंके अनुसार लोकमें जाकर फल भोग करता है।

प्रत्येक जन्ममें मनुष्य नये नये कर्म सञ्चय करता है। मरनेके पीछे वह भूलोकके कर्म सञ्चय करके भूलोकमें भी आमजाता है। संसारमें रहते समय मनुष्यकी जैसी प्रकृति थी, जैसे कर्म किये थे, उन्हींके अनुसार परलोकमें भी सब काम करता है। इससे आगे बात बारीक है गुरुमुखसे एकान्तमें सुनने योग्य है। तथापि जो कुछ कहने योग्य है वह अगले प्रबन्धमें कहते हैं।

---

# मृत्युके पीछे क्या ?

जब जीते जी अपने जीवनके कामोंही में से बहुत बातोंके विषयमें मनुष्य कुछ नहीं निश्चय कर सकता तो मृत्युके पीछे उसकी क्या दशा होगी इस बातका निश्चय करना तो बहुतही कठिन है। धर्म प्रवृत्ति और विवेक बलसेही जो कुछ जान सके उतनाही

मनुष्यके पारलौकिक ज्ञानका उपाय है। बड़ी चेष्टा और अध्यवसायसे यह ज्ञान मनुष्यको प्राप्त होता है। अच्छे लोग सब सुखोंको छोड़कर इसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं। मनुष्य शरीर ऐसा है कि चेष्टा करनेसे उसे यह ज्ञान मिल सकता है। परन्तु इतर प्राणियोंको वह सब ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता इसीसे मनुष्य शरीर उनसे बहुत श्रेष्ठ है। इसीसे महात्माओंने उपदेश किया है कि मनुष्य जीवनका आदर करो क्योंकि उन्नति और ज्ञानका पथ केवल इसी जीवमें मिलता है। जब हमारा इतना बड़ा अधिकार है और फिरभी हम अपनी उन्नतिका पथ तलाश न कर सकें तो हमारे समान मन्दभाग्य और कौन हो सकता है।

जीवकी मृत्यु उसका नया शरीर या सूक्ष्म शरीर धारण करना है। लोग अपने किसी कुटुम्बकी मृत्यु देखकर जिस प्रकार विलाप करते हैं उसी प्रकार मुक्तात्माकी परिस्थितिके स्थानमें आनन्द फैल जाता है। जिस प्रकार मनुष्यके स्थूल शरीरमें रहनेके समय उसके स्थूल देहधारी बन्धु बान्धव उसे घेरे रहते हैं और उसके शरीरकी रक्षाकी चेष्टा करते हैं उसी प्रकार शरीरसे प्राण त्याग होनेके समय मनुष्यके सूक्ष्मदेहधारी बन्धु बान्धवभी उसे आकर घेर लेते हैं और यह बाट देखते हैं कि कब उसका प्राणवायु निकले और हम उसे साथ लेकर जावें। जब उस जीवको देहरूपी पिञ्जरेसे मुक्ति होती है तो उनको बड़ा आनन्द होता है। मरते समय कितनेही मनुष्य मस्तिष्ककी उत्तेजना बढ़ जाने पर अपने मरे हुए कुटुम्बोंके नाम लेकर पुकारते हैं। इसका क्या कारण? वैद्य डाक्टर समझते हैं कि ज्वरकी तेजीसे मस्तिष्कमें बहुत गर्म्मी आ जाती है इसीसे मनुष्यका भाव विकृत हो जाता है। परन्तु देखना चाहिये कि जब उसका ध्यान ऐसे लोगोंकी तरफ लग जाता है जो इस संसारमें नहीं है तो स्पष्ट ज्ञान पडता है कि वह मुक्तात्मा लोगोंका दर्शन करता है तथा उनकी बातें सुनता है। इसीसे वह उनके नाम

लेकर पुकारभी उठता है। इससे हमें स्पष्ट शिक्षा मिलती है कि मृत्यु होनेसे मनुष्यका बाहिरी शरीर नष्ट हो जाता है परन्तु उसका अस्तित्व नहीं मिटता। जीव अपने देहके सदृश्यही जो सूक्ष्मदेह धारण करता है उसे हम देख नहीं सकते हैं। परन्तु यदि किसी उपायसे हम अपने मनको सूक्ष्म कर सकें तो मृतात्माओंका दर्शनभी कर सकते हैं। तथा उनसे बात चीतभी कर सकते हैं। विकारमें मानसिक भाव एक प्रकारसे सूक्ष्मत्वको प्राप्त हो जाता है इसीसे विकारी रोगी अपने पास खडे मृतात्माओंको देख सकता है। मूर्छागत स्त्रियांभी कभी कभी ऐसी बातें कहती हैं जो उनकी समझ और शक्तिसे बाहिर है। स्वप्नमें आदमी मृतात्माओंको देखता है।

कठिन समय पडने पर अथवा कठिन पीडासे घबड़ा कर मनुष्य सब उपायोंको भूलकर ईश्वरकी ओर ध्यान लगाता है। उस समय उसके मनकी वृत्तिमें एक आश्चर्य नमता आ जाती है। बहुधा जब लोग भगवानके मन्दिरके सामने अथवा देवी देवताओंके स्थानोंमें जाकर धरना देते हैं और मनको एकाग्र करके उसीका स्मरण करते हैं तो अचेतन अवस्थामें उनको कभी कभी अपने रोग या दुःखकी दवा मिल जाती है। कभी कभी अच्छे हो जाते हैं और कभी कभी यहभी मालूम हो जाता है कि उनका अब कुछ उपाय नहीं। ऐसी अवस्थामें कभी कभी उनको ऐसाभी मालूम होता है कि कोई मृतात्मा आकर उनको दवा पिला रहा है अथवा उसके दुःख दूर होनेका उपाय बता रहा है। इससे भी स्पष्ट है कि मरनेके पीछे मनुष्यका अस्तित्व लोप नहीं होता।

जब तक मनुष्य बाहिरी इन्द्रियोंको लेकर बाहिरी जगतमें फिरता है तब तक उसे केवल बाहिरी चीजोंहीका ज्ञान होता है। परन्तु जब भीतरी इन्द्रियोंको लेकर भीतरी जगतमें फिरता है तो उसकी ज्ञानशक्ति बहुत बढ़ जाती है। तब वह इस लोकहीमें

रह कर परलोककी कितनीही बातें सीखता है। इसके लिये हिन्दू महर्षियोंने योग निकाला है। योगशक्ति ज्यों ज्यों साधकके शरीरमें बढ़ती है त्यों त्यों ज्ञानकी वृद्धि होती है। अन्तमें हृदयके दिव्य नेत्र खुल जाते हैं। उस समय मनुष्यकी बड़ी सुखकी दशा होती है। संसारके सुखोंसे उस सुखकी कुछ तुलना नहीं हो सकती।

शरीर छूटने परभी जीवके कर्म शेष नहीं होते। जीव कर्मवश पृथिवी या अन्य लोकोंमें जाकर पिछले कर्मोंका फल भोगता है और नये कर्म संचय करता है। जब उसका कर्मबन्धन छूट जाता है तो परब्रह्ममें जाकर लीन हो जाता है, यही आत्माका स्वभावसिद्ध गुण है। यहभी कहा जा चुका है कि भले और बुरे कर्मोंके अनुसार मनुष्यकी दशा बदलती रहती है। इस भले और बुरेहीके कारण मृत्युके समय जीवकी दशा बदलती है। वह फिर मनुष्य होता है, कीट पतङ्ग और नीच प्राणियोंके शरीरमें चला जावे अथवा कोई देवभाव धारण करे।

जीव शरीरोंकी आलोचना करनेसे देखा जाता है कि सामान्य कीट पतङ्गसे पक्षी बड़े और बलिष्ठ हैं। मनुष्य चौपायोंसे छोटे होने परभी बुद्धिबल और शरीरकी बनावटके बलमें सबसे उत्तम है। शरीरसे हाथी बहुत बड़ा होता है तथापि बुद्धिमें मनुष्य बड़ा है। इसीसे बुद्धिबलकी श्रेष्ठताका अनुमान करना चाहिये। सहज ज्ञान सब जीवोंमें है पर विवेक ज्ञान मनुष्यहीमें है। यह ज्ञान शिक्षा द्वारा कितनीही बढ सकती है। उसका अन्त नहीं। सहज ज्ञानकी अपेक्षा विवेकबुद्धिसे ही मनुष्य अधिक काम लेता है। संसारके काम अधूरे छोड जानेसे मनुष्य फिर बन्धनमें आता है क्योंकि मरते समय उनकी वासना उनके चित्तमें रह जाती है।

शास्त्रोंमें लिखा है कि वासनाकी समाप्ति न होनेसे मनुष्य फिर जन्म लेता है। अकालमृत्यु, गर्भयन्त्रणा, मृत्यु समयका कष्टभी

जीवके पूर्व बुरे कामोंका बदलाही है, परन्तु नये कर्म्म सञ्चय करनेको फिर जन्म होही जाता है। वासना बनी रहनेसे जीवको फिर भूमि देखना पडती है। केवल मनुष्य देहही नहीं नीच योनियोंमें जन्म लेना पडता है। जो लोग इस जन्मके उपयुक्त कार्य्य न करकेही मर जाते हैं वह ऊंचे लोकोंमें कैसे जावेंगे॰ सीढी सीढी चढकरही ऊपर जाना होगा। बङ्गाली 'साधु' राम कृष्ण परमहंस जीका विचार इस विषयमें यों है ,—

"कच्ची हाडीको तोडकर कुम्हार फिर हाडी बनासकता है परन्तु आगमें तपाई पक्की हाडी टूटनेसे कुम्हार उसका कुछ नहीं करसकता। अज्ञान अवस्थामें मरनेसे फिर जन्म होता है परन्तु ज्ञान होकर मरनेसे फिर जन्म नहीं होता।" ज्योतिष शास्त्रभी इस विषयमें खूब बताता है कि पहले जन्ममें मनुष्य क्या था और दूसरेमें क्या होगा। मनुष्य यह सब न जानकरही सन्देहमें रहता और अयथा पथमें घूमता है अच्छे ज्योतिषी घोर नास्तिकोंकी नास्तिकताको भी तोडकर जीवनका उन्नत पथ दिखा सकते हैं।

एक मनुष्यको वायु रोग हुआ। घटना कोई दस बारह सालकी कलकत्तेकी है। रोगीके कहनेमेंही पहले वह उसके मामाके यहा भेजा गया। वहा उसका इलाज हुआ पर फायदा कुछ न हुआ। तब वह कलकत्तेमें विख्यात वैद्य गङ्गाप्रसाद सेनके पास लाया गया। वैद्यजीने उसके लिये कुछ तेल और एक दवा दी। दो दिन उसको दवा दी गई। तीसरे दिन वह तेल और दवाके नामसे चिढने लगा। कहने लगा कि इससे फायदा नहीं नुकसान होता है। तब उसे बहुत कह सुनकर होमियोपैथी इलाजके लिये राजी किया गया। दवा दी जाने लगी। पर चार दिन पीछे इस दवासेभी उसने नाराजी दिखाई। कहाकि इससेभी हानि होती है। पूछा क्या हानि होती है? उत्तर दिया कि पहले भूख न थी अब भूख लगती है, पहले निद्रा न होती थी

अनिद्रा होती है। पहले आनन्द न था अब आनन्द होता है। इससे मेरी हानि होती है। मुझे ऐसी दवा दो कि जल्द मर जाऊं। तब उससे पूछा कि तुम्हें मरना क्यों पसन्द है तो उत्तर दिया कि हमारा सब कुछ लोगोंने लूट लिया है कुटम्बका पालन कैसे करेंगे? ऐसी अवस्थामें मरनाही भला। सब लोगोंने समझा कि वह पागल है।

फिर वह कहने लगा कि मुझे घर भेजदो। वहां पुत्र कन्याको देखूंगा कामकाज सम्हालूंगा। उसका इतना आग्रह देखकर उसे उसके घर भेजा गया। परन्तु वहां जाकर वह एकदम आत्महत्या करनेकी चेष्टा करने लगा। दवा खाना बन्द करदी। जब उसकी यह दशा देखी तो कलकत्तेके दो नामी ज्योतिषियोंको उसकी जन्मपत्री दिखाई गई। ज्योतिषियोंने कहा कि तीन दिनमें गणना करके कहेंगे। बीमारके कुटम्बियोंने सुना कि कलकत्तेमें काशीके भी एक नामी ज्योतिषी आये हुए हैं। उनका नाम देवदत्त था। एक हिन्दुस्थानी रईसके साथ उक्त बीमारके कुटम्बी देवदत्त जीके पास आये। दोपहरके दोबजेका समय था। ज्योतिषीने कहा पत्री कल सवेरे आओगे तो देखेंगे। यदि सवेरे आना न हो तो प्रश्न करो उसका उत्तर अभी देंगे।

पण्डित जीको यह बात सुनकर उनसे यह प्रश्न किया गया,— "हमारा एक कुटम्ब पागल होगया है। उसके भाग्यका भावी फल जानना चाहते हैं?"

पण्डित जीने उनसे तीनके बीचके चार अङ्क कहवाये और उनसे जन्म कुण्डली प्रस्तुत की। फिर कहाकि तुम्हारे पास कुण्डली तो हैही मिलाकर देखो उन्होंने जो कुण्डली बना दी है यह और वह मिलती है या नहीं। बीमारके कुटम्बने उसे मिलाकर देखा तो दोनों ठीक मिल गईं।

तब ज्योतिषी जीने उस बीमारके विषयमें यह कहा,—"कोई

छ मास हुए एक कर्म्मचारीसे उसको कुछ नोकझोंक हुई। उससे उसका मस्तिष्क गर्म्म होगया। पीछे उसे सन्देह होने लगा कि मानो उसके भोजनमें विष मिलाकर कोई उसे मारडालनेकी चेष्टा कर रहा है। पीछे शहरके लोगोंपर उसका अविश्वास हुआ अन्तमें घरके लोगों पर भी। उसके जीमें यही बैठगई कि अब यहां रहेंगे तो निश्चय प्राण जावेगा। इसीसे वह मकान छोड़कर आठ कोस दूर किसी स्वजनके यहां रहने लगा। वहां भी अविश्वास हुआ तो कलकत्ते आया। यहां भी वही दशा हुई। वहांसे अब वह अपने घर है। पर बड़ी विपद दिखाई देती है। पहले उसने कईबार आत्महत्याकी चेष्टा की पर घरके लोगोंने बचा लिया। अब आत्महत्या किया चाहता है। विलम्ब नहीं। खैर आप लोग यह बतावें कि जो बातें मैंने कही वह मिलती है या नहीं।

बीमारके कुटम्ब ज्योतिषीकी बातें सुनकर अवाक रह गये। क्योंकि उसकी बातोंका एक एक अक्षर सच्चा था। मानो ज्योतिषी सब कुछ अपनी आंखोंसे देखता था। उन लोगोंको विश्वास भी न था कि ज्योतिषी गणना करके यहांतक बतासकता है। अन्तमें कुटम्बोंने कहा, कि आपकी बातका एक एक वर्ण ठीक है परन्तु क्या कोई ऐसाभी उपाय है जिससे वह आत्महत्या न करे।

ज्योतिषीने कुछ देर कुण्डली पर खूब ध्यान देकर कहा कि बुध इस मनुष्यका बहुतही विरोधी है। कोई ग्रह ऐसा नहीं जिसका उसे बल हो। पागल अच्छा होसकता है परन्तु यह पीछेका पागल सहजमें अच्छा नहीं होसकता। और नवग्रहका होम कराओ, शायद कुछ लाभ होजावे। यह मनुष्य बड़ाही अभागा है। सब कुछ उसके प्रतिकूल है। शुभकार्य करनेमें शकुनकी जरूरत पड़ती है, अब कृष्णपक्ष है उसमें क्या अच्छा दिन मिलेगा। और हम पञ्चाङ्गसेही एक दिन स्थिर करदेते हैं उसीमें पूजा होम होजाना चाहिये। ज्योतिषीने औरभी कुछ

कामकी बातें कहीं। उसमें उस मनुष्यके कुटुम्बकी बातें माता और सन्तानकी बातें सब थीं। यह बातें सब ठीक थीं।

ज्योतिषीजीसे पूछा गया कि उस आदमीको वहांसे अन्यत्र लेजाना चाहिये या नहीं? ज्योतिषीने कहा कि अष्टमगर्त्तोमें उसकी मृत्यु लिखी है इससे उसका और कहीं लेजाना ठीक न होगा। क्योंकि उससे मङ्गल नहीं अमङ्गलहीकी सम्भावना है। अबतक उसके कुटम्बके लोग रक्षा कर रहे हैं इसीसे वह बचा है परन्तु नियत दिनको कोई भी रक्षा न कर सकेगा।

उस बीमारका वह कुटम्बी जब चलने लगा तो ज्योतिषीने कहा कि आपने, दूसरेकी बात तो बहुत पूछी पर अपनी कुछ न पूछी। उसने कहा कि आप एक मनुष्यके मुखसे एक दिनमें एकही प्रश्न सुन कर उत्तर देते हैं उस दिन वह मनुष्य दूसरा प्रश्न नहीं करसकता इसीसे मैं चुपरहा। ज्योतिषीजीने कहा कि बात ठीक है। एक प्रश्न करना होता है। परन्तु आपके एकही प्रश्नके उत्तरमें आपकी बातोंका भी तो उत्तर होसकता। मैंने इस विषयमें आपका सम्बन्ध भी जान लिया है। यह कहकर ज्योतिषीने उस कुटम्बका हाल भी कहना आरम्भ किया। ज्योतिषी जो बोलता था उसमें जरा फर्क न था। अन्तमें ज्योतिषीजीने जो उपदेश किया उससे उस मनुष्यका मन भी हुआ।

तब वह कुटम्ब कलकत्तेके ऊपर कहे दो ज्योतिषियोंके पास गया। उनसे भी यही उत्तर मिला कि बीमारकी दशा अच्छी नहीं है। मौत उसके सिर पर मन्डला रही है। इसके सिवा और बातेंभी कलकत्तेवाले ज्योतिषियोंसे पूछी गईं परन्तु वह कुछ बता न सके।

परन्तु काशीके देवदत्त जीने बीमारकी मृत्युका समय आदि सब बातें भी ठीक ठीक बतादीं। कलकत्तेके पण्डित काशीके पण्डित जीके ऐसी शक्ति सुनकर बड़े आश्चर्यमें आये। उन्होंने कहाकि जब ऐसा ज्योतिषी गणना करचुका है तो अब हम क्या करेंगे?

कलकत्तेके ज्योतिषीजी काशीके उक्त ज्योतिषीसे मिलने आये। परीक्षाके लिये एक आदमीके विषयमें प्रश्न हुआ। उसकी जन्म-पत्री कलकत्तेके पण्डित जी ने ली और काशीवाले बिना देखेही उसकी सब बातें कहने लगे। सब बातें मिलती देख कर कलकत्तेके ज्योतिषी जी को बड़ा विस्मय हुआ। काशीके ज्योतिषी जी ने कलकत्तेके ज्योतिषीको बहुतसे ऐसे श्लोक लिखवाये जिनसे गणना करनेमें भविष्यमें कलकतिया ज्योतिषीजीको बड़ा उपकार मिला।

अब जिस बङ्गाली बाबूके भाग्यकी गणना काशीजीके ज्योतिषी जी ने की थी उसका परिणाम भी सुनिये। ज्योतिषी जी ने जो दिन बता दिया था उसी दिन नवग्रहका होम समाप्त करादिया गया। परन्तु सम्वत् १८४२ की चैत्र कृष्ण दशमी की आधी रात को वह मनुष्य अपने घरके लोगोंसे खूब छिप कर निकल खड़ा हुआ। किसीको उसके उठ जानेकी खबर न हुई। पीछे फांसी लगाकर मरगया। अपनी माताका यह अकेलाही पुत्र था। पिता बाल्यकालहीमें मर गया था। कई बालक लड़के लड़कियां छोड़ गया। २६ वर्षकी उमरमें प्राण दिया। यह कालवश होकर इतना भ्रमान्ध हुआ कि मौतके बिना उसका निस्तार न हुआ। पण्डित देवदत्त जीने जो कहा था सब सत्य हुआ। कृष्णपक्षहीमें उसकी मृत्यु होगी यह बात ज्योतिषीजीने अच्छीतरह जान ली थी। उसीसे जल्दी करके उन्होंने नवग्रहका होम भी उसी पक्षमें कराया था। कर्मफलका भोग अखण्डनीय है। ज्योतिषी जीने यह बात भलीभांति स्पष्ट करदी।

जब मनुष्यकी उन्नति उसके कामों पर है तो हरेक काम इस रूपसे होना चाहिये जिससे उन्नतिका मार्ग लाभ हो। जहां उन्नति न होगी वहा [illegible] न होगा। अवनति [illegible] दुःखमें पड़ना होगा। [illegible] द्वारा कथित पथ पर चलनाही

# उप संहार।

धर्म्म शान्ति सुखका आकार है। जगत्में धर्म्मसेही पाप पुण्यका भेदाभेद जान पड़ता है, धर्म्म न होता तो यह संसार न जाने कैसा भयानक रूप धारण करता धर्म्मकी मधुरता लाभ करकेही पापी पापके बोझसे हलका होता है पुण्यात्मा अमृत सागरमें गोते लगाता है। पूर्व्वकालमें सत्यधर्म्मानुरत महर्षिगण भारतवर्षमें जो धर्म्मकी उन्नति साधन करगये हैं वह आजभी धर्म्म जगत्में सबके शिर पर विराजती है भारत यद्यपि अपना सब अधिकार खो बैठा है तथापि उसका अधिकार सदा वैसाही बना रहेगा। काल सबको उलट पलट कर सकता है परन्तु जिस विशुद्ध सत्य अकृत्रिमभाव पर आर्य्यधर्म्मकी जड़ दृढ़ है, वह कभी विनष्ट नहीं होसकता। काल असत्यको ही उलट पलट कर सकता है सत्यकी सीमा तक वह जाही नहीं सकता।

भारतवर्षका अब संपूर्ण सुखका दिन नहीं है उसकी वह स्वाधीनता अब नहीं है। मातृहीन बालकका जीना जैसा कष्ट दायक होता है निःसहाय माता वैसेही बालकका ठीक ठीक पालन करनेसे असमर्थ होती है। हमलोग यद्यपि अपनी उसी माताकी गोदमें हैं तथा माता स्वाधीन नहीं है वह जैसी सहाय हीन अवस्थामें पड़ गई है उससे सन्तानगणके कल्याणकी आशा बहुतही कम रखना चाहिये। जो लोग मातृभक्ति-परायण हैं, माताके हितसाधनके लिये दृढ़ प्रतिज्ञ हैं, सत्यनिष्ठ कुलाचार पालनमें तत्पर हैं ऐसीही सन्तान अपनी भारतवर्षरूपी माताके दुःखको दूर कर सकती हैं।

जो लोग जातीय भावकी रक्षा करके समाजके नेता होसकते हैं उनसे जितना कल्याण देशका हो सकता है, औरोंसे उतना नहीं

हो सकता। जहां जातीय भावका अभाव है वहीं नानाप्रकारके अमङ्गल आकर उपस्थित होते हैं स्वजातीय भावसे स्वजाति वालोंके हृदयमें जैसा आनन्द होता है विजातीय भाव वैसाही उनके हृदयमें असन्तोष उत्पन्न करता है। आजकल जैसा समय आगया है उसमें जातीय भावकी रक्षा रखना बहुतही कठिन हो गया है। परन्तु जब तक इस भावकी रक्षा ठीक ठीक न होगी तब तक किसी प्रकारकी शुभकामना करनाभी व्यर्थही है।

भारतवर्षमें जिस समय मुसलमानोंने बड़ा अत्याचार किया था उनके शासनमें हिन्दुओंने बड़ीही यन्त्रणा भोगी थी परन्तु उस समय भारतवर्ष विचलित नहीं हुआ। आज विद्या बुद्धि सम्पन्न अंगरेज जातिका शासन भारतवर्षमें जारी है इससे भारतवर्षकी दशा भयानक क्यों पलट गई? यदि ध्यानसे देखा जावे तो दोष अपनाही है। क्योंकि मुसलमानी समयमें हममें अपने धर्मकी बड़ी हठ थी। अब पराये शकल पर मरते हैं। इस समय जो लोग हम पर शासन करते हैं उनके आचार व्यवहार पर लट्टू होकर उन्हींकी नकल कर रहे हैं। इस नकलमें भी उनके दोष ग्रहण कर रहे और गुण त्याग रहे हैं। इसीसे अपने धर्मसे भक्ति घटती जाती है और अपने कर्मकाण्ड आदि सबमें कमजोरी आती जाती है। हिन्दूधर्ममें विजातीय भाव घुसता जाता है। यहां तक कि कहीं तो इसके नीचे हिन्दूधर्म दबाया गया है, कहीं पाखण्ड [illegible] दिखाया जाता है और कहीं कोई उपधर्म [illegible] गया है।

अनमोल हिन्दूधर्म जो हमारे बड़े आदरकी वस्तु है, जिससे हिन्दुसन्तानका मुख उज्ज्वल होता है, जिसकी छाया पानेसे जी अत्यानन्द होता है वह प्यारा हिन्दूधर्म इस समय लड़कोंका खेल बन रहा है। इसमें साकार और निराकार उपासनासे इतना भेद होगया है कि एक दूसरेको शत्रु और एक दूसरेको

छणासका पहचानना कठिन हो रहा है। इस समय भारतवर्ष विशेष कर पञ्जाब आदिके बहुत स्थानोंमें ऐसी दशा हो गई कि हिन्दू सन्तान अपना धर्म्म एकदम खो बैठे विना सुखसे न बैठेगी। इस समय अधर्म्मही भारतवर्षको धर्म्म होनेका धोखा दे रहा है। सब चीजोंकी शकल पलट गई है। मन्दिरों तीर्थस्थानोंमें वह बातें होने लगी हैं कि साधु सज्जनोंको उनसे भय होता है। हां दुष्कर्म्मियोंके लिये वहां खुला द्वार होने लगा। धर्म्म एक प्रकारकी धोखावाजी होता चला। असली धर्म्म अंधेरेमें दबने लगा। आज कल धर्म्मकी दुहाई देकर भारतवर्षमें कितनेही आदमी अधर्म्मीके काम कर रहे हैं। हिन्दुओंके उज्ज्वल मुख पर उनके कामोंसे खूब स्याही फिर रही है।

हिन्दूधर्म्म कभी नीच भावका पोषक नहीं है। जहां नीचाशयता है समझ लो कि वहां वञ्चकोंका आडम्बर है असली हिन्दुधर्म्म वहां नहीं है। कितने हजार वर्ष बीत गये युगों पर युग बीत गये कोई ऐसा धर्म्म न निकला जिसने हिन्दूधर्म्मकी प्रखरा ज्योतिको मलिन किया हो। परन्तु हाय! हममें कुछ ऐसे लोग उत्पन्न हो गये हैं जो बाप दादाओं धर्म्मको गालियां देकर कुछ नये मनमाने नियम तराश कर एक नया उपधर्म्म तय्यार करते हैं। परन्तु उसमेंभी सबकी एक राय नहीं। उसमें अपनी अपनी राय चलानाही सबको पसन्द है। इसीसे हिन्दूधर्म्मसे भक्तिश्रद्धा दिन पर दिन कम होरही है। हिन्दू अपने वर्त्तमान अनाचारोंसे स्वयं अपने लिये घोर विपद उपस्थित कर रहे है। विदेशीय भिन्नधर्म्मी लोगोंका नाना देशोंसे आना जाना आजकल भारतवर्षमें बहुत सहज हो गया है। उनको देखो तो उनका जातीय भाव अच्छी तरह दिखाई देता है परन्तु भारतसन्तान अपना भाव आचार व्यवहार स्वयं खोरही है। जहां धर्म्म कमजोर होगा वहां उपधर्म्मका जोर क्यों न होगा।

सन्सारभरको धर्म सिखानेवाले भारतवासी पराये धर्मकी नकल पर मरें यह क्या कम दुःखकी बात है? अपने समान वरके खजानेको भूलकर पराये द्वार पर भिक्षा मांगने जावें यह क्या कम मर्म्मवेदनाकी बात है? हिन्दूसन्तान। तुम्हें धर्म विषयमें किससे क्या सीखना है? तुम हिन्दुकुलमें उत्पन्न हुए यदि तुम्हारा आचार व्यवहार तुम्हारे पास रहता तो कैसी अच्छी तुम्हारी शोभा होती। पराये आचार व्यवहारमें मिलनेसे क्या तुम्हारा गौरव रहेगा? तुम्हारे वैदेशिक भावसे समाजमें तुम्हारी हंसी होती है तथा कोमल चित्त वालोंके मन डांवाडोल होते हैं। मत खोओ अपनी जातिकुल मत खोओ तथा देश भाइयोंको अपने साथ मत बिगाडो। क्योंकि सब लोग तुम्हारी चलाई चाल पर काम न चलेंगे। तुम स्वयं पथसे भटक जाओगे। क्या तुम जानते नहीं कि तुम्हारे जैसे एक आध नहीं दस बीसके बहकानेसे भी हिन्दु सन्तान बहक जाती तो क्या अब तक हिन्दूधर्म दिखाई देता? अपनी काम बुद्धिसे तुम स्वयं कामकाजमें करते हो। नहीं तो देखो कि तुम्हारे बडे धर्मपथ आचार व्यवहार नीति आदि सब जरूरी चीजें तुम्हारे लिये बहुत उत्तम प्रकारसे तय्यार करगये हैं। किसी चीज की कमी नहीं है।

त्रिकालदर्शी योगियों, वनों जङ्गलोंमें कुटीर बनाकर संसारके माया मोहको लात मारकर ईश्वका ध्यान करनेवाले ऋषि मुनियों की सन्तान, ऊपरी चमक तथा दुनियाके खेलोंमें लिप्त रहनेवाली जातिके लोगोंके धर्म और आचार व्यवहार पर लट्टू हो, समयकी विचित्र गति इससे भलिभांति जानी जाती है। जिन लोगोंने इस समय भी विदेशी और विधर्म्मी होकर धर्मकी खोज की है उन्होंने यही कहा है कि धर्मभूमि, आर्य्यभूमि ही है, धर्म सीखना हो तो उसी भूमिमें जाकर सीखो और प्राचीन ऋषिगणके उपदेश पर चलो। संसारमें जो लोग मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य तक न समझ

सकते हों उनसे क्या कोई धर्म्म सीख सकता ? जो लोग भोग और सुखोंकोही जीवनका मुख्य कार्य्य समझते हैं, उनके पास धर्म्म क्यों फटकेगा ?

बहुतोंका खयाल है गृही होकर धर्म्म पालन नहीं करसकता यह भाव भी वैसाही खराब है जैसा पराये धर्म्मके भाव ग्रहण करना। घरमेंही आदमी जन्म लेता है, वहीं पलता है और बढ़ता है। वहीं उसके ज्ञान और बुद्धि बलकी बढ़ती होती है इन सब बातोंसे क्या यह साफ विदित नहीं होता है कि वह घरही हमारे लिये सबप्रकार मङ्गलकारी और सुखका आकर है जिसमें हमने जन्मग्रहण किया है। संसारमें रहनेसे मनुष्यको एक न एक घरका आश्रय लेनाही पड़ेगा। इसीसे तुम्हारा नाम गृही वा आश्रमी हुआ है। शरीरमें बहुत पीड़ाएं उत्पन्न होजानेसे जिसप्रकार वह शरीर दुःखदायी होजाता है, उसीप्रकार यदि कुटम्बके लोग तरह तरहके क्लेश खड़े करदें तो घर भी दुःखका मूल होजाता है। परन्तु जिस आश्रममें रहकर तुम्हारे शरीर और मनका बल दिन पर दिन बढ़े, धर्म्म पथमें तुम्हें दृढ़तासे लेजावे ऐसे आश्रमसे तुम क्यों अप्रसन्न होगे ? यदि तुम अपना धर्म्म बल ठीक रखके ईश्वरकी ओर ध्यान लगाओगे तो तुम संसाराश्रमका सुख क्यों न भोग सकोगे ? और यदि संसारमें रहकर तुम्हें सदा अधर्म्म पथ पर जानाही प्रिय हो और खराब बातोंही की तरफ तुम्हारी रुचि हो तो, गहन बनमें छोड़ आने पर भी तुम क्या सुधर सकते हो ? तुम्हारे जैसे काम होंगे वैसाही फल तो तुम्हें सर्व्वत्र मिलेगा। सो तुम अच्छी शिक्षा लेकर धर्म्म पर दृढ़ रहो फिर जहां रहोगे अच्छेही रहोगे। जबतक धर्म्मके तत्वको और ध्यान न दोगे तबतक संसारके अयथा कामोंमें लिप्त होगे। ईश्वरके राज्यमें रहकर जहां तुम्हारे आत्मज्ञानकी उन्नति होगी वहीं सुख मिलेगा।

मनुष्य उच्च उदारताके बलसे महत् धर्मभाव हृदयमें धारण कर सकते हैं, तुम संसारके कीड़े होकर यदि केवल लौकिकतर्कके बलसे उसे लाभ करनेको चेष्टा करते हो, अपने कर्त्तव्य कार्य्यकी ओर दृष्टि नहीं करते हो, निश्चय तुम्हें घोर अन्धकारमें पड़कर विषम यन्त्रणा भोग करना पड़ेगी। तुम्हारा उपदेश तुम्हारा तर्क जब तक आर्य्यधर्मके मूल विषयको लेकर न होगा तब तक तुम और जो तुम्हारी बात पर विश्वास करते हैं वह कभी ठीक मार्ग पर नहीं जा सकते। तुम लौकिकताके कामोंमें धर्मका बहाना करके जितनेही इधर उधर घूमोगे उतनेही कोल्हूके बैल बनते जावोगे। तुम यदि सत्यरामर्श पर चलना चाहते हो तो चाहे लौकिकताके अनुवर्ती होकर बाहिरी कामोंमें लिप्त रहो चाहे बाहिरी कामोंको एकदम परित्याग करके आत्माके निगूढ़ तत्वमें मन लगाओ। तुम पराई नकल पर मरते हो पराये धर्मकी नकल पर अपने लिये एक नया धर्म गढ़ते हो तुम्हारा धर्मभाव कैसे प्रस्फुटित होगा? तुम जो स्वदेशके अमङ्गल दूर होनेके भरोसे पर अपने मनसे धर्म तराशते हो एक बार यह तो विचारो कि इसका परिणाम क्या होगा? अपने देशके जल वायुको पहचानो। तुम्हारे बड़ोंने देश काल पात्र समझ कर अपने देशकी जो वृद्धि की थी। वैसी और कहीं नहीं हुई। जब तक यह भारतवर्ष अपने आदिष्ट आचार व्यवहार और धर्मसंगत नियमोंको अनुमोदन करके चलता रहा तब तक इस देशकी उन्नतिके सिवाय अवनति नहीं हुई। जबसे स्वेच्छाचारिता फैली है तभीसे यहांकी अवनति आरम्भ हुई। अब इस अवनतिका स्रोत किसी किसी स्थानमें ऐसा प्रबल होगया है कि उसके प्रतिकूल विहित पथ पर चलना नितान्त कष्टकर होगया है परन्तु ऐसी दुर्दशामेंभी जहां जहां पूर्व्व नियम पद्धति बनी हुई है वहांका आचार व्यवहार देख कर मनमें स्वर्गीय आनन्द होता है। अतएव तुम यदि भारतवर्षके

सूक्ष्मदर्शी मनीषि लोगोंके चलाये आचार व्यवहारकी उपकारिता देखना चाहते हो तो उनके अनुमोदित सुपथ पर चलो। अभ्यास होनेसे उनके महत्तभावको समझ सकोगे। यदि धर्म्ममें प्रकृत सुखशान्ति लाभ करनेका कोई विषय जगतमें है तो वह सिवाय आर्य्यधर्म्मके और किसीमें नहीं है। हाय हाय! हिन्दू होकर अपने बड़ोंकी बड़ाई करनेकी जगह उनकी उज्ज्वल कीर्त्ति पर स्याहीका पोता फेरा जाता है यह कैसी दुःखकी बात है। तो क्या यही समझ लें कि विपथ पर चलनेकी हिन्दुओंमें बीमारी फैल गई? क्या अब इस दोषसे बड़ोंकी बड़ाई धूलमें मिलती जायगी और गुणियोंकी गुणकी लघुता होती जायगी?

सावधान अपने धर्म्मके नियमानुसार न चलनेसे कभी मनुष्यकी उन्नति नहीं हो सकती। अच्छे पथ पर चलना हिन्दूधर्म्मही सिखाता है इसीलिये अपना धर्म्म पालन करनेके लिये अपने स्वजातियोंको आह्वान करते है इसीमे समाजकी दुर्नीति दूर करनेके लिये बार बार अनुरोध करते हैं इसीलिये हिन्दूधर्म्मके मूलतत्वके प्रकाश करनेमें यथासाध्य चेष्टाकी है इसीलिये जातितत्व परलोकतत्व आदिकी चर्चा की गई है। भगवान कृष्णचन्द्रके निकट यही प्रार्थना है कि इस पुस्तकके पढ़नेसे हिन्दुओंके हृदयमें अपने धर्म्मकी विमल ज्योतिप्रविष्ट हो, मोहान्धकार छूट जाय, हिन्दू धर्म्म पर हिन्दुओंका दृढ़ बिश्वास हो और ईश्वरके अनन्त मंगल भावसे प्रत्येकका अन्तर पूर्ण हो।

# धर्म्मका अपमान ।

कुम्हारके चाकको भांति समय फिरता है। कविने खूब कहा है,—"सब दिन नहीं बराबर जात।" महाराज युधिष्ठिरकी यज्ञके समय हिन्दुओंका जो बल था तथा हिन्दुधर्म्मका जो प्रभाव था, महाभारतके होनेके पश्चात वह दशा न थी। उक्त यज्ञके समय पाण्डवोंने भुजबलसे पृथिवीके समस्त नरेशोंको जीत कर, महाराज युधिष्ठिरके साम्राज्यका अधीन बना दिया था। चारों दिशाओंके नरेश उक्त यज्ञमें भेंट लेकर हाजिर हुए थे। परन्तु महाभारतके अन्तमें भारतवर्ष एक बार ही उजाड़ होगया था। कितने अच्छे अच्छे राज्य वन जङ्गलके समान बन गये थे। संस्कृत की अवनति होने लगी। अविद्या और आलस्यका डेरा जमने लगा। जो शूर वीर थे, धर्म्मात्मा धर्म्माचार्य्य थे सबही भारत युद्धमें खप चुके थे। महाराज युधिष्ठिरने बड़ी बेमनगीसे कुछ दिन शासन किया। उसके पीछे अन्धेरा होने लगा। वेद विद्याको धीरे धीरे लोग भूलने लगे। नानाप्रकारके मत मतान्तर फैलने लगे। उसके साथ साथही कर्म्मकी प्रधानता भी घटने लगी। ईश्वरोपासना, यज्ञ, दान, श्राद्ध आदि सब बातोंमें कमी आने लगी। आस्तिक भारतमें नास्तिकताका जोर हुआ धर्म्मके सूर्य्यको नास्तिकताकी घटाने आच्छादित करलिया। कुछ कालके लिये घोर अन्धेरा फैल गया। परलोकका भय लोगोंके चित्तसे घटने लगा। मान मर्य्यादा नष्ट होने लगी। कलिकालकी करालता पहलेही भारतमें बहुत कुछ प्रतिबिम्बित होने लगी। परन्तु पीछे विक्रमादित्यके उदय होने पर एक बार फिर भारतसन्तानका भाग्य

कन्यायें छीन कर महलोंमें बुलाई गईं। हजारों नर नारी दास बनाये गये। लाखों हिन्दू पहाड़ों पर लेजाकर बध कर डाले गये। दूध पीते बालक मातापिताकी गोदसे छीन कर पत्थरों पर पटके गये। यह पिशाच लीला भारतवर्षमें विशेष गङ्गा यमुनाके तट पर बहुत काल तक रही। परन्तु तब भी ऐसे लोगथे जिन्होंने इस अपमानका कुछ बदला लिया और अपने धर्म्मको जहांतक बना रक्खा की।

धर्म्मका इतना घोर अपमान होने पर धर्म्ममें कमजोरी कैसे न आवे। यवनोंके सतानेसे हिन्दुधर्म्म खूबही कमजोर हुआ। तथापि उस समय ऐसे लोग थे जिनके जीमें इसका बदला लेनेकी थी। समय समय पर उनसे जो कुछ बनता था वह करते थे। कभी कभी बदला भी लेते थे। धर्म्मयुद्ध करते थे। कितनेही वीर चत्रियोंने उस कठोर समयमें घरबार छोड़कर बन पर्व्वतोंमें पशुओं को भांति रहना आरम्भ किया परन्तु अपनी मातृ भूमिकी स्वाधीनता की हठको न छोड़ी।

मुसलमानोंके हाथसे हिन्दुधर्म्मका जैसा कुछ अपमान हुआ उससे अधिक कदाचित पृथिवी पर कहीं भी किसी धर्म्मका अपमान न हुआ होगा। फिर सात आठ सौ वर्षका लगातार अत्याचार सहना सहज बात नहीं है। परन्तु उस समयके हिन्दू यही समझते थे कि हमारा नितान्त मन्द भाग्य होगया है उसीसे यह विपद हम पर पड़ी है। खैर जबतक प्राणमें प्राण है तब तक अपने धर्म्मको न छोड़ेंगे, जो विपद पड़ेगी उसे झेलेंगे क्लेशोंका यथासाध्य सहेंगे। भगवान एक दिन हमारे दिन भी फेरेगा उसी दृढ़ताके कारण अबतक आर्य्यधर्म्म जीवित है।

भगवानकी कृपासे वह घोर समय अब नहीं है। भारतवर्षका शासन भार ईश्वरने एक ऐसी बुद्धिमान और न्यायवान जातिके हाथमें दिया है जिसकी सुयोग्यतासे भारतवर्षमें चारोंओर शान्ति

विराजती है। सबको अपने अपने धर्म कार्य स्वाधीनता पूर्व्वक करनेका पूरा,पूरा अधिकार है। अङ्गरेज महाराजकी दृढ प्रतिज्ञा है कि वह कभी किसीके धर्ममें हस्तक्षेप न होने देगा। कोई किसी पर धर्मके बहाने अत्याचार न करने पावेगा। सब अपने अपने धर्ममें आनन्द करें।

इसे कुछ शेखसे मतलब न ग़रज़ आदी बरहमनसे।
उसे काबा मुबारक हो मुबारक उसको बुतखाना॥

हिन्दुओंके लिये ऐसा अच्छा समय सैकडों वर्षों पीछे आया है। इस समय वह जिसप्रकार चाहें धर्म साधन करसकते हैं। मन्दिरोंमें पूजा करें तीर्थ यात्रा करें सब सुगम होगया। रेल सडकों और पुलोंके बनजानेसे तीर्थयात्रा बहुतही सुगम होगई है। इसी तीर्थों पर कभी कभी बडे बडे भारी मेले होजाते हैं। अङ्गरेज महाराजका धर्म इस्लाम होने पर भी उसे हिन्दू लोगोंको हिन्दू देखनाही प्रिय है। अभी हमारे भारतवर्षके बडेलाट, श्रीमती महारानी विक्टोरियाके प्रतिनिधि, लार्ड कर्ज्जनने काठि वाडमें सब राजकुमारोंको उपदेश किया है कि यद्यपि तुमलोग अङ्गरेजी पढते हो, परन्तु तुम सदा अपने धर्ममें सावधान रहना अपने हिन्दूपनके नियमोंको मानना और यह ध्यान रखना कि तुम लोगोंको हिन्दू प्रजाका राजा बनना है तथा हिन्दू प्रजाका शासन और पालन करना है। इससे सुन्दर समय हिन्दुओंके लिये और क्या होसकता है?

---

# अपने हाथों अपमान।

दुःखका विषय है कि इस शान्ति भरे सुन्दर समयका हिन्दू लाभ नहीं उठासके। उलटा ऐसा मौका उपस्थित होगया है कि यदि उसमें परिवर्त्तन न हो तो बड़ी भारी हानि होसकती है। मुसलमानोंने हमारा अपमान किया हमें घोर क्लेश पहुंचाया सो सब सत्य है। पर वह पराये हाथोंका अपमान था। आज वह समय आया है कि हम आप अपना अपमान करते हैं। जिसका अपमान होता है उसका तेज और पुण्य चीण होता है तथा बल वीर्य्य नष्ट होता है। परन्तु शत्रुके हाथसे अथवा दूसरोंसे अपमान होनेसे उतनी हानि नहीं है जितनी अपने हाथसे अपमान होनेसे है। जिसका अपनेही हाथों अपमान होता है समझलो कि उसके अधःपतनमें देर नहीं है। कर्णका तिरस्कार पाण्डवोंके हाथसे भी हुआ। परन्तु जब वह भीष्म और द्रोणके निपात होनेके पश्चात् युद्धको चला है और उसके सारथी शल्यहीसे उसको वचसा होगई और शल्य द्वारा उसका अपमान हुआ तो एकदमही उसका भाग्य उतर गया।

मुसलमान या क्रस्तान पादरीगण हिन्दुओं और उनके धर्मकी निन्दा करें तो उतनी बुरी बात नहीं है जितनी स्वयं हिन्दू निन्दा करें तो होसकती है। महमूद गजनवी यदि शिवालय तोड़े तो उतनी दुर्भाग्य की बात नहीं है जितनी किसी हिन्दू नरेशके खड़े होकर तोड़नेसे होसकती है। मुसलमान मन्दिरोंका मूर्तिपूजनका तथा तीर्थ स्थानोंका निरादर करते थे, हिन्दू यथासाध्य अपनी रक्षा करते थे। सड़कों पर पादरी लोग हिन्दुओंके शास्त्रों तथा कितनेही कामोंको गालियां देते हैं, कुछ लोग सुनकर चुप होजाते

हैं, कुछ हंसकर उडा देते हैं तथा कुछ लोग कोई उत्तर भी देदेते हैं। परन्तु हिन्दू लोगोंके घरोंहीमें ऐसी सन्तान उत्पन्न होजावे जो अपने धर्म्म कर्मको वेद शास्त्रको बाप दादाको तथा रीति नीतिको गाली देने लगे और उसका घोर अपमान तथा अवज्ञा करके चले तो इससे अधिक भयानक बात और क्या होसकती है। यदि ऐसीही दशा कुछ दिन बनी रहे तो फिर हिन्दुओंका क्या ठिकाना। किसी जातिके भीतरही धर्म्म विप्लव खडा होजावे तो उसका धर्म्म कैसे रह सकता है?

ऊपर दो एक जगह कहचुके हैं कि अंगरेजी शिक्षाके प्रभाव तथा विदेशियों भिन्न धर्म्मियोंकी सगतसे इस देशके नव शिक्षितोंके चित्तमें बहुत कुछ डावाडोल मचा। डावाडोल मचनेका प्रधान कारण यह हुआ कि मुसलमानी अत्याचारोंसे संस्कृतका पठन पाठन बहुत कम होगया था। साधारण लोग तो अलग रहे जो गुरु पुरोहित और आचार्य थे जो धर्म्मके नेता कहलाते थे वही संस्कृतको भूल कर निज कर्तव्यको भूल कर, आनन्दमें जीवन बिताने लगे और नवाबी जीवनकी नकल करते हुए नानाप्रकारके व्यसनोंमें फसकर दीन दुनियासे बेखबर होगये। हिन्दू धर्म्म अनाथके तुल्य होगया। कोई सीधा मार्ग बतानेवाला न रहा। ऐसी घोर निद्राकी दशामें पादरियों तथा भिन्न धर्म्मियोंने हिन्दू धर्म्मकी निन्दा आरम्भ की और उसके लिये वह नई नई युक्तिया गढ़ने लगे। कभी कह दिया कि मूर्त्ति तो काठ पत्थर की है हिन्दू बडे अहमक हैं जो उनको पूजते हैं। गङ्गा तट पर जाकर कहा कि गङ्गा तो पानी है इसके पूजनेसे क्या फल होगा। कहीं मरे बाप दादाका भी श्राद्ध होता है, यह कब हो सकता है कि खीर पूरी तो ब्राह्मण खावें और पहुंच जावे तुम्हारे बाप दादाको। अवतारकी बात वाहियात है क्योंकि ईश्वर अजन्मा है वह कभी जन्म नहीं ले सकता। जाति पाति कुछ नहीं, ब्राह्मण क्षत्रिय कुछ

पञ्जाबकी हुई थी। वहां ठीक महाप्रलय मची हुई थी। हिन्दुओं की जान पर आफत आगई थी। स्वामी दयानन्दजीके नये पंथने वहीं पूर्ण उन्नति पाई। उसी देशमें स्वामीजी महाराजकी अच्छी पूजा हुई। घर घर उनके सत्यार्थप्रकाशकी बातें होती थीं। लोग उसमेंसे जितनी बातें सुन लेते थे उन्हीं पर मस्त होजाते थे। उन्हीं बातोंके सहारे मनसे दस बात तय्यार करके हिन्दुओंको विशेष कर ब्राह्मणोंको गालियां देते थे। स्वामी दयानन्दका नाम चारोंओर गूंजता था। बारह साल पहले सन् १८८८ ई० में पंजाब तथा पश्चिमोत्तर प्रदेशके लाहौर, अमृतसर, जालन्धर, पेशावर, फीरोजपुर, मेरठ, अजमेर आदि नगरोंमें हमने अपनी आंखोंसे जो कुछ देखा उसका कुछ वर्णन करते हैं।

---

## आंखों देखी।

मूर्त्तिपूजा, अवतार, नाम महात्म्य, तीर्थश्राद्ध, वर्ण व्यवस्था, सदाचार, पातिव्रत धर्म्म आदिकी वह निन्दा अङ्गरेजी पढ़े पंजाबियोंके बालक करते थे कि सुनकर कानोंमें उंगली देनेका जी होता था। बालक क्यों, बड़े बड़े अहलकार, हाकिम अमले, लम्बी लम्बी डाढ़ियों वाले वकील एवं मिलकर सनातन धर्म्मकी निन्दा करते थे। गुरु पुरोहितोंको गालियां मिलती थीं। माता पिता दादा परदादा मूर्ख कहे जाते थे। ब्राह्मणोंको देखतेही लोग "पोप, पोप" कहकर चिल्लाते थे। माथे पर तिलक चोटी जनेऊ आदिको देखतेही उनकी निन्दा आरम्भ होती थी। सैकड़ों गीत ऐसे बनाये गये थे जिनमें धर्म्मकी खूब निन्दा

थी। यही गीत आर्य्यसमाजके मन्दिरों मेले ठेले तथा सड़कों पर गाये जाते थे। मन्दिरोंमें पूजा करते समय यह लोग पहुंच जाते थे और पूजा करनेवालोंकी हंसी उड़ाते थे। कहते, "क्यों पोपजी यह गोल गोल पत्थर क्या है ? इसे क्यों पूजते हो ?" गङ्गातट पर कहते,—"गङ्गाजीमें जो मेंडक मछली रहते हैं इनकी मुक्ति क्यों नहीं होती।" ब्राह्मणको देखतेही कहते,—"कहो पोपजी कुछ हलवा खीर मिली ? क्यों तुम्हारा पेट क्या लेटर-बक्स है जो तुम खाओ और दूसरोंके बाप दादाओंको पहुँच जावे" अजमेरमें एक दिन एक शिवालयमें एक दयानन्दी कहने लगा,— "यदि मैं इस महादेवके सिर पर ठोकर मारूं तो यह मेरा क्या कर सकता है ?" एक दिन लाहोरके लुहारी दरवाजेकी तरफ एक मकानकी छत पर हम कई मित्रोंके सहित बैठे थे। वसन्तके दिन थे। वहीं दो चार दयानन्दीभी बैठे थे। वह मित्रोंहीमें से थे। सामने सड़ककी मैला बहानेकी नाली बहती थी। एक पञ्जाबी खत्री साहब बोल उठे कि भला माता पिताकी राख और हड्डियां गङ्गाजीमें पहुंचानेसे क्या लाभ है ? इस नालीमें फेंक दी जावे तो उससे कौनसी हानि है ? हमारे एक साथीने उत्तर दिया कि आपका जैसा विचार है वैसा करनेमें कोई आपको रोक नहीं सकता है। अपने माता पिताकी हड्डियोंका आपको अधिकार है चाहे गङ्गाजीमें फेंकें चाहे मोरीमें। इस उत्तरसे वह सज्जन कुछ लज्जित अवश्य हुए परन्तु अपनी वह तान तबभी उड़ाये गये। इसके बाद उनमेंसे दो तीनने मिलकर एक होली गाई। खूब ताल स्वरसे गाई। होलीमें गणेशजीकी निन्दा थी, ब्राह्मणों और पुराणोंकी निन्दा थी। होली गाकर वह लोग खूब हंसे। पीछे फिर हिन्दूधर्मकी निन्दा की। हमारी मित्रताका विचार वह एकदम भूल गये थे। जिससे हम चिढ़ें उसीमें उनको आनन्द था। यह दशा देखकर हमारेभी जीमें बड़ा दुःख हुआ कि है

दयानन्द सरस्वती जीवित थे। वह इन स्थानोंमें हिन्दुओंको गाली देते, तथा वेदके अनाप शनाप अर्थ करते, तीर्थों मन्दिरोंका अपमान करते दनदनाते निकल गये। किसीने उनको न रोका न टोका। यदि किसीने कुछ कहाभी तो आपने, अपने मसखरापनसे उसे लूलू बनाया। काशी, मथुरा, अयोध्या आदि स्थानोंमें बड़े बड़े सन्यासी महन्त पण्डित तथा, गद्दीवाले गोस्वामी लोग मौजूद थे। पर यह सब अपनी अपनी नर्म्म गद्दियों पर पड़े शरीरका आनन्द ले रहे थे। लाखोंकी जागीरें लाखोंकी आमदनी भोगते थे और मोहनभोगका मज़ा लेते थे। अपने सुखको छोड़ कर वह विरोधियोंके आक्रमणकी ओर जराभी ध्यान न करते थे। करते कैसे अभी चेले चेलियोंका झुण्ड इन महात्माओंके सामनेसे कम नहीं हुआ था। उधर वैष्णव शैव आदि मतोंके माननेवाले तथा रक्षक राजा महाराजभी बैठे देख रहे थे कुछ न करते थे। भगवानने इन सबको अपने अपने स्थानोंमें सुख और अभिमानमें मस्त रहने दिया। हाय! सनातनधर्म्म इतने सहाय रहने परभी निःसहाय था बड़ाही बुरा समय था! मानो पृथिवी गायका रूप धर कर पुकारती थी कि हे नाथ! अब रक्षा करो।

ईश्वर सहाय हुआ। उसने अपने संकल्पको एक दीन ब्राह्मणके हृदयमें जगाया। वह ब्राह्मण न धनी था न अमीर था जागीरदार था, न सरकारी उपाधिधारी था न कोई ऊंचा दरजा रखता था, न विद्वान था न बाबू था और न किसी बड़े शहरका उद्दण्ड आदमी था। यदि हम यह कहें तो कुछ अनुचित नहीं है कि कोईभी शक्ति उसके पास ऐसा महान कार्य्यके सम्पन्न करनेके लिये न थी। न विद्याका बल न धनका बल और न जनका बल। जिस कामको करनेको बड़े बड़े विद्वान पण्डित राजा रईस समर्थ न होते थे उसे एक सब प्रकार बलहीन मनुष्य द्वारा आरम्भ कराना ईश्वरहीकी प्रेरनासे हो सकता है। जिस काममें हजारों नहीं लाखोंका

खर्च दिखाई दे, जिसमें एक बड़ी भारी विद्याकी शक्ति दरकार हो, उसे एक निर्धन विद्याविहीन मनुष्य कैसे कर सकता है। किन्तु जब वह दीन ब्राह्मण अपने घरसे निकला तो उसके पास सचमुच कुछभी न था।

वह अपने घरसे निकल कर श्रीवृन्दावनधाममें गया। वहां बड़ी गरीबीसे गुजारा करके एक साल तक भगवान कृष्णचन्द्र आनन्द कन्दके चरणोंका ध्यान किया। मथुराजी से उसने उर्दूमें एक समाचारपत्र निकाला। वह सनातन हिन्दूधर्मकी तरफ दारीके लेख निकलने लगे। सबसे पहले हमारी आंखोंने पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेशमें वही एक समाचारपत्र देखा था जिसमें हिन्दू धर्मकी तरफदारी थी। इससे पहले हमने उसओर किसी पत्रमें कभी हिन्दुओंकी कुछ हिमायत न देखी थी।

इस समाचार पत्रके आरम्भमें देवनागरी अक्षरोंमें लिखी हुई हिन्दी कवितामें एक प्रार्थना हर नम्बरमें होती थी। कविताकी सुन्दरता उसमें कुछभी न रहने पर भाव और विचारकी गम्भीरता बहुत कुछ थी। आज भी यदि उन सब प्रार्थनाओंको जोड़ कर कोई पढ़े तो अच्छी तरह विचार सकता है कि किस ओर उस बालक गरीब ब्राह्मणका ध्यान था। वह किन बातोंको भगवान कृष्णचन्द्रके चरणोंमें प्रार्थना करता था।

वृन्दावनमें एक साल काट कर इस गरीब ब्राह्मण कुमारने भारतवर्षमें दौरा आरम्भ किया। प्रवीण लोग भलीभांति समझ सकते हैं कि जिसके पास न विद्याका बल था, न धन बल, न अपनी कुछ प्रतिष्ठा हो उसे अपनी एक हैसियत बनानेमें कितना कष्ट और कितना घोर परिश्रम उठाना पड़ता है। गरीब आदमी किसी अमीरके द्वार पर जा खड़ा हो तो उसकी कैसी इज्जत होती है। दूसरोंके धन और विद्याकी मदद करके एक महान कार्यमें लगाना सहज बात नहीं है। विशेष कर ऐसी घोर निद्राके

समयमें जबकि लोग अगली पिछली सब भूले हुए थे। धनी निर्धनके समान दिखाई देते थे और विद्वान मूर्खों से बढ़कर बने हुए थे। हिन्दू धर्मकी उस समय वह दिल्लगी उड़ती थी कि अच्छे अच्छे धर्मात्माओंका आत्महत्या करनेको जी चाहता था। उस समय श्रीमती एनी बेसेण्ट भारतवर्षमें नहीं आई थी और न कोई स्वामी विवेकानन्द अमेरिकामें जाकर हिन्दू वेदान्तका झन्डा उड़ाता था। कर्नल अलकाट तब भारतवर्षमें आनाही सीखे थे। उनका भी बहुत जोर न था। तब वह सनातन हिन्दू धर्म को केवल आरम्भही की जांच पड़तालमें लगे हुए थे। मिसमेरिजम करते थे योगाभ्यास करते थे। वह बेचारे स्वयं कुछ सीखनेको थे सिखानेका दावा उनमें कुछ न था। इन सब बातों पर भी उक्त ब्राह्मण कुमारका परिश्रम सफल हुआ श्रीमती महारानीको प्रथम जुबिलीके अवसर पर संवत् १९४४ के ग्रीष्म ऋतुके आरम्भमें श्रीहरिद्वार पुण्यक्षेत्र हिन्दू सनातन धर्मके लिये एक महती सभा हुई। उसका नाम हुआ श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल। जिस ब्राह्मण कुमारके श्रमका यह फल हुआ उन्हीका नाम है श्रीयुक्त पण्डित दीनदयालु शर्म्मा।

उक्त महामण्डल बड़ी बेसरोसामानी में किया गया था तथापि भारतवर्षके बहुत स्थानोंके धर्म प्रेमी लोग उसमें एकत्र हुए। बड़े लोगोंमेंसे बहुत बड़े लोग तो न आये पर कपूरथलाके स्वर्गवासी दीवान रामजस जी, सी, एस, आई आये। बड़े बड़े महाराज राजा न आये परन्तु लाहोरके स्वर्गवासी राजा हरिवंश सिंह तथा सरदार अनूप सिंह आये। मथुराके पण्डित नन्दकिशोर देव शर्म्मा, बिहारसे पण्डित अम्बिकादत्तजी व्यास कलकत्तेसे पण्डित देवीसहाय जी जालन्धरके स्वर्गवासी पण्डित देवीचन्द्रजी तथा पंजाब और दूसरे प्रान्तोंके कितनेही पण्डित और पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा पंजाबके कितनेही मध्यम श्रेणीके रईस और साधारण

धर्मप्रेमी लोग आये। इस महामण्डलका अधिक काम उर्दू होमें हुआ था क्योंकि हिन्दी बेचारी की उधर कुछ भी शक्ति न थी। तीन चार दिन हरिद्वारमें खूब धूमधाम रही। हिन्दू धर्मकी अच्छी आलोचना हुई। कर्नल अलकाट साहबके दो व्याख्यान भी हिन्दू धर्मको सारता पर हुए। कर्नल साहबने हिन्दुओंको चेताया था कि अपने धर्मको बुझी हुई अग्निमेंसे चिंगारी तलाश करो और उसे फिर उद्दीपन करो। उत्सव यद्यपि आरम्भहीका था और सामने भी कुछ न था, तथापि प्रभाव बड़ा सुन्दर हुआ। बहुतोंका ध्यान स्वधर्म रक्षाकी तरफ खिच गया। एक औरही प्रकारकी हवा भारतवर्षमें चल गई। सचमुच सोती हुई हिन्दु सन्तान मानो कलबलाकर उठखड़ी हुई। समाचार पत्रोंके सम्पादक और उपदेश लोगोंने स्वदेशमें लौटकर इसकी बात प्रचार की। तह सब दृश्य हमने आखोंसे देखा था। अहा! आज १२ साल इस बातको हुए हैं। इतनेही दिनोंमें मानो समय पलट गया। उस समय केवल दस पाच उर्दू और हिन्दीके पत्रोंमें श्रीभारतधर्म महामण्डल की चर्चा हुई थी। लाहोरका "कोहेनूर" पत्र हिन्दू मालिक का पत्र होने पर भी महामण्डलकी चर्चा जी खोल कर न करसका। मजा यह था कि स्वयं मुन्शी हरसुख राय जी कोहेनूरके मालिक हरिद्वारके मण्डलमें शरीक तथा उसके वाइस प्रसीडण्ट थे।

हरिद्वारके महामण्डलके बाद पण्डित दीनदयाल शर्माने पञ्जाबके कितनेही नगरोंमें फिरकर सनातन धर्मका प्रचार किया। कितनोंही धर्म सभायें स्थापनकीं। परन्तु लाहोरमें वह नहीं गये थे। लाहोर उस समय हिन्दू धर्मके विरोधियोंका गढ बना हुआ था। उस नगरमें किसीका साहस न होता था कि हिन्दू धर्मकी चर्चा तक करसके। अन्तको सन १८८८ ई॰ में पण्डित दीनदयाल शर्मा वहा भी व्याख्यान देनेको पहुचे।

कई दिन तक पण्डित जी महाराज लाहौरके गली कूचोंमें घूमकर वहांका रंग ढंग देखते रहे। इतने बड़े लाहौरमें न कोई उनका साथी था न किसीने उनको बुलाया था। मुन्शी हरसुख रायने बहुत कह सुन कर अनारकलीमें दिल्लीके खत्रियोंका मन्दिर व्याख्यानके लिये मांग दिया। नगरमें नोटिस होगया कि पं० दीनदयालु जी का व्याख्यान होगा। व्याख्यान होनेकी तिथिसे तीन चार दिन पहले नोटिस हुआ था। उसकी दिल्लगी उड़ने लगी। इस दिल्लगी की खबर दिल्ली वालोंको भी लगी। ठीक व्याख्यानके समय उन्होंने कहला भेजा कि हमारे मन्दिरमें व्याख्यान न होने पावेगा। मुन्शी हरसुख राय बेचारेके होश उड़ गये। वह दौड़ कर अनारकली गये। दिल्लीवालोंको किसीप्रकार प्रतिज्ञा भङ्ग न करने पर राजी किया। उन्होंने कहा कि खैर हमारे मन्दिरमें व्याख्यान हो पर हम फर्श न देंगे। यह दुर्दशा धर्म्मकी उस समय लाहौरमें थी कि हिन्दु धर्म्मका नाम लेनेसे हिन्दुओंका कलेजा कांपता था! ठाकुरजी के मन्दिरमें भी सनातन धर्म्मके व्याख्यानसे लोगोंको भय लगता था!

कोहिनूर आफिससे एक फटा पुराना फर्श लेकर पण्डित दीनदयालु शर्म्मा स्वयं व्याख्यानके स्थानको चले। वह फर्श उन्होंने अपनेही हाथसे बिछाया। फर्शका दूसरा कोना "कोहिनूर" के सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्तके हाथमें था। दो आदमियोंने मिल कर फर्श बिछाया। अन्तको नियत समयसे दो घण्टा पीछे बड़ी खराबीके बाद फर्श बिछानेवाले वक्ता साहबने व्याख्यान आरम्भ किया। अब विचारशील विचार सकते हैं कि इतनी खराबीके बाद भी वक्ता यदि वक्तृता देनेका साहस करे तो उसे कहांतक सफलता होसकती है। परन्तु पण्डित दीनदयालु जीने अपने होश हवास ठीक करके वक्तृता देही डाली। उस दिन कोई खास विषय भी न था खाली एक भूमिका सी ही थी। परन्तु वही

लोगोंकी घमघमाहट पा... बीचमें दोवक्टा वक्तृता होने पाई थी कि रात होगई। वक्तृता बन्द की गयी। लोग तथापि डटेही रहे। पण्डितजी भावी दिनके लिये कुछ कहने भी न पाये कि सभामें से दो लोग खड़े उठे और कहने लगे कि पण्डित जी का व्याख्यान भाई नन्दगोपाल जी रईसके मकानके चौकमें होगा।

व्याख्यान आरम्भ करनेसे पहले पण्डित जी को कोई भी न जानता था। पर समाप्ति पर उनके बहुत मित्र होगये। अब आगेसे उनकी खातिरदारी आरम्भ हुई। चौकमें उनके व्याख्यानमें अगले दिन एक हजार श्रोता थे परन्तु तीसरे दिन दो हजार और सातवें दिन "मूर्तिपूजा" मण्डनके व्याख्यानमें दस हजारसे अधिक लोग थे। छतों पर और मैदानमें कहीं स्थान न था। आर्य्य समाजके बड़े बड़े लीडर सनातन धर्म्मके बड़े बड़े विद्वान पण्डित, नगरके अमीर गरीब, अदालतोंके अमले अहलकार वकील आदिसे स्थान ठसाठस भरा हुआ था। एकही सप्ताहमें लाहोरमें सनातन धर्म्मका डङ्का बज गया। पेशावर, रावलपिंडी, डेरा इसमाईलखा आदि सरहदी स्थानों तकके लोग लाहोरमें व्याख्यान सुनने आये। हिन्दू विरोधियोंके रंग उड़ गये थे चेहरे फक होगये। उन दिनों आर्य्य समाजके मन्दिरमें व्याख्यान होनेके समय पचास आदमी जुड़ना कठिन होगये थे। लगातार २७ व्याख्यान होनेके बाद लाहोरमें एक भारी उत्सव हुआ। वेदकी सवारी बाजारोंमें निकाली गई।

इस उत्सवमें पञ्जाबके नाना प्रान्तोंके पण्डित तथा रईस लोग आये। बड़ी धूमधामका मेला हुआ। सवारीका जुलूस आध मीलसे कम लम्बा न था। वेद भगवान पालकीमें सवार थे। कितनीही तरहके बाजे बजते थे। विद्यार्थी संस्कृत स्तोत्र पाठ करते थे। कीर्तन मण्डलियां मधुर स्वरसे कीर्तन करती थीं। हजारों मनुष्य नङ्गे पांव सवारीके साथ थे। बाजारवालोंने दुकाने सजाई... [illegible] लोगोंके गले ... [illegible]

सड़कें भर गई थीं। इतर केवड़ा और गुलाब बरस रहा था वेद मुखसे सड़कें तर होगई थीं। जहां तहां वेदकी आरती होती थी भेंट होती थी। स्त्री और बालकोंसे दोनों ओरकी छतें लदी हुई थीं। सैकड़ों शङ्ख और घड़ियालें बजती थीं। छोटे छोटे बालक मकानकी खिड़कियोंसे घड़ियालें बजाते थे। सारा लाहोर आनन्दसागरमें लहरें मार रहा था। यही जान पड़ता था कि लाहोरमें कभी हिन्दूधर्मका विरोध न था। लाहोर मनुष्यपुरी नहीं देवपुरी है।

परिणाम यह हुआ कि लाहोरमें एक बड़ी जबरदस्त सनातनधर्मसभा बन गई। हिन्दूधर्मके विरोधकी हवा वहांसे खारिज हो गई। तबसे कोई बालक वहां नहीं बहकता है न आर्य्यसमाजी होता है। जो बिगड़े थे उनमें से भी बहुत सुधर गये। बहुतसे बीचही में सुधर गये। आगेको बिगड़नेका पथ बन्द हो गया। हां जो एकदम बिगड़ गये थे उनका भाग्य फिर न सुधरा। वह अबभी अपनी जिद पर कायम हैं। परन्तु अब उनका हौसिला पस्त और हिम्मत ढीली है आगे चलकर वहभी दिखावेंगे।

---

# श्रीभारतधर्म महामण्डल।

इस प्रकार अपनी वाचा शक्तिके बलसे पण्डित दीनदयालु शर्म्माने हरिद्वारमें श्रीभारतधर्म महामण्डलकी नींव डाली। दस बीस मध्य श्रेणीके विद्वानोंको एक स्थान पर एकत्रित किया। इसके पीछे वह प्रचारको निकले। मेरठसे आरम्भ करके पञ्जाबके बड़े बड़े नगरोंमें घुसे। वहां धर्म्मसभायें बनने लगीं। जहां धर्म्मसभा

कौंकी सभाएँ जहां स्थापित हुईं और जहां निष्फल थीं उसे बन्द करवाया गया। पञ्जाबमें इसकी धूम पड़ गई और एक वर्षमें आर्य्यसमाजका भय सबके जीसे जाता रहा। छोटे छोटे बालकोंको भी आर्य्यसमाजी प्रश्नोंका उत्तर देना आगया। यहां तक स्वयं आर्य्यसमाजियोंही पर प्रश्न करनेकी बुद्धि लोगोंमें आ गई और वे आर्य्यसमाजी उनका उत्तर देनेमें खटपटाने लगे।

इस प्रकार पञ्जाब पर प्रभाव डाल कर अगले वर्षके अन्तमें महामण्डलका दूसरा अधिवेशन हुआ। इसमें पञ्जाबियोंके सिवा पश्चिमोत्तरदेशके लोगोंका भी खूब जोर हुआ। हरिद्वारके पहले महामण्डलमें प्रयागके मेलेके प्रतापसे महामण्डलकी शोभा बढ़ी। परन्तु वृन्दावनमें महामण्डलके कारणही वहांके प्रसिद्ध वैष्णोत्सवोंकी शोभा बढ़ी। इसके बादसे पश्चिमोत्तर प्रदेशमें भी महामण्डलका अच्छा प्रचार होने लगा।

वृन्दावनमें महामण्डलकी कुछ शकल बनी थी। कुछ प्रस्ताव आदि भी निश्चित हुए। एक विस्तृत रिपोर्ट छपी। परन्तु सहायता किसीने नहीं दी थी इसीसे महामण्डल ऋणग्रस्त हो गया। महामन्त्रीने ऋण उतारनेकी चेष्टा की परन्तु ऋण औरभी बढ़ने लगा। जो लोग इसकी प्रबन्धकारिणी सभाके मेम्बर बने थे वह इसकी सहायता करनेसे जी चुरा गये। महामण्डलकी लाज [illegible]। परन्तु एक विशेष सज्जनकी सहायतासे बच गई। इसी प्रकार रुपयेकी जरूरतके लिये महामण्डलको बड़ा भारी कष्ट उठाना पड़ा। कितनीही बार इसकी दशा बनी और बिगड़ी। कितनीही बार यह ढीला होकर दृढ़ हुआ। कारण यही था कि लोग इसके साथी बन कर भी इससे डरते थे कि कहीं हमारे गलेमें घण्टी न बंध जावे।

इतने दृढ़ प्रतिज्ञ महामन्त्रीजीका हौसिला तबभी न टूटा। वह जहां तहां फिर कर महामण्डलके उद्देश्योंका प्रचार करते

लगी। पचासों स्थानोंमें धर्मसभा खुल गई पाठशालायें खुल गईं। मध्यम श्रेणीके लोगोंमें इसका अधिक प्रचार हो जानेसे उच्च श्रेणीके लोगोंकी खुशामद करनेकी जरूरत नहीं रही। धीरे धीरे महामंडलकी इज्जत स्वदेशमें भी होने लगी। अब तक महामन्त्रीजी पञ्जाब और पश्चिमोत्तरप्रदेशहीमें घूमते थे। पर अब दिल्ली प्रान्तमें भी महामंडलका आदर हुआ। दस सालकी बात है संवत् १८४७ में दिल्लीमें महामंडलका एक बड़ा भारी अधिवेशन हुआ। दिल्ली निवासी सज्जनोंने उसके खर्चका बोझ स्वयं सम्हाल कर बड़े बड़े उत्साहसे किया। इसकी धूम बङ्गदेश तक पहुँची। एक बङ्गाली अमीर इसमें शरीकभी हुए। और कुछ अमीर उस समय इसमें शामिल थे। यहांतक महामण्डल की उन्नति होती जाती थी। यहीं आकर उसकी नाव फिर डगमगाने लगी। क्योंकि अमीरोंके जुबानी उत्साह पर भरोसा करके महामण्डल एक महाकार्य्यालय और महाविद्यालय स्थापन करनेका प्रस्ताव उठा बैठा। परन्तु उन अमीरोंने दगाकी जिससे वह दोनो काम भी न बने और उत्साह भङ्ग होनेसे महामण्डल भी डगमगा उठा। इसका यह फल हुआ कि महामन्त्री जी ने एक सुन्दर सिद्धान्त पर आरूढ़ होनेका अवसर पाया। वह यही कि किसी काममें जल्दी न करना तथा किसीकी मौखिक बातों पर विश्वास करके भारी काम का काम न उठा लेना, जो कुछ करना धीरे धीरे करना तथा पर की आशा छोड़कर करना।

इस उत्साह हीनतामें भी महामण्डलके दो और बड़े बड़े उत्सव होगये। एक महर्षि मंडलके नामसे हरिद्वारक्षेत्रमें कनखल तीर्थ पर दूसरा श्रीकाशीपुरीमें भारतधर्म महामंडलके नामसे। इनमेंसे पिछलेमें महामन्त्री जी मौजूद न थे। एक बङ्गाली अमीरके उत्साहसे वह होगया था। पहला भी विलक्षण था। विद्वानोंका उसमें खूब समागम था।

इसके बाद फिर भी प्रचार जारी रहा। अमीरोंकी श्रद्धता की अच्छी परीक्षा होती रही। यह भी मालूम होता रहा कि भारतवासियोंकी क्या अवस्था है। राजस्थानमें भी महामण्डलका प्रचार हुआ। होते होते बम्बई प्रान्तमें व्याख्यान हुए। हैदराबादमें दो तीन मास अच्छी धूम रही इस कलकत्ता महानगरमें भी दो बार खूब उपदेश हुआ। सारांश यह कि महामण्डलकी चर्चा सारे भारतवर्षमें फैल गई। सब लोग जानगये कि हिन्दू धर्मकी समर्थक और रक्षक भारतवर्षमें एक महासभा बन गई।

बारह मासमें महामण्डलने जो कुछ किया वह बहुत कुछ सन्तोषजनक है। लाहोरमें सनातन धर्मसभा तथा सनातन धर्म स्कूल बनगया। लाहोर दयानन्दी पन्थ वालोंकी राजधानी है। वहां उनका एक भारी कालिज है। बहुत चेष्टा करने पर भी हिन्दू वहां अपना कालिज नहीं बनासके तथापि दयानन्दियोंने जिन कामोंके लिये लाहोरको गढ बनाया था उनके उन कामोंमें बाधा पडी। हिन्दुओंको जोकुछ वह हानि पहुंचाते थे वह महा-मण्डलने रोकदी। तीन बड़े बडे मन्दिर भगवानकी मूर्तिकी पूजाके लिये सनातन धर्मसभाके व्याख्यानों तथा उसके सहाय मेम्बरों द्वारा खास लाहोरमें बनगये। यह ऐसे मन्दिर हैं कि पञ्जाब केशरी महाराज रणजीत सिंहके समयमें भी वैसे न बन सके थे। भाई नन्दगोपालका मन्दिर, लाला मूलचन्द जी का मन्दिर तथा पण्डित बनूशीधर जी का मन्दिर लाहोरमें श्रीभारतधर्म महा-मण्डलका प्रचार होनेसे पहले नहीं थे। अंमृतसरमें खूब प्रचार महामण्डलका हुआ। वहां एक जबरदस्त पाठशाला भी लाला सन्तराम बनागये। इस समय लाहोर विशेषकर अमृतसर काशी मथुराकी भांति पञ्जाबमें हिन्दुओंके प्रधान नगर बने हुए हैं। जालन्धर भी आर्यसमाजियोंका दूसरा गढ है। वहां मास पार्टीके दयानन्दियोंका बड़ा ज़ोर है। वहां भी महामण्डलने सनातन धर्म

सभा दृढ़ कर दी। एक बहुत सुन्दर संस्कृत पाठशाला वहां जारी होगई। इस नगरमें भी महामंडलके व्याख्यान विशेष धूम धामसे होते रहे हैं। इसीप्रकार पेशावरमें भी एक जबरदस्त संस्कृत पाठशाला बनगई। दयानन्दी धर्म उक्त नगरसे एकदम निर्मूलसो होगया। रावलपिंडी तथा डेराजात आदि नगरोंमें भी दयानन्दियोंका बल टूट गया। इसीप्रकार पश्चिमोत्तर प्रदेशके नगरोंमें भी महामंडलका खूब डंका बज गया।

इस समय दयानन्दी समाज गिरती जाती है। हिन्दुओं पर उनका कुछ भी असर नहीं है। एक भी हिन्दू बालक या युवा उनके बहकानेसे दयानन्दी नहीं होता है। उनकी शक्तिके टुकड़े टुकड़े होगये हैं। दयानंद की बातोंसे स्वयं उनका विश्वास हटने लगा है। एक दल मांसभक्षण को भला समझता है उसका नाम मांस खोर पड़ा है। लाहोरका दयानंदी कालिज इसीके लीडरों के हाथमें है। दूसरा दल मांसविरोधी है उसका नाम घासखोर है। इसके लीडर जालन्धरमें है और कालिजसे वीतराग होकर अपना एक नया "गुरुकुल" बनाते हैं। उसमें लड़के लड़कियोंको ब्रह्मचर्य्य सिखावेंगे। इनके सिवा और भी दो तीन दल हैं जो अपनी डेढ़ ईंटकी मसजिद अलगही बनाना चाहते है। पंडित भीमसेन जी पहले दयानन्द जी के बड़े समर्थक और परम शिष्य थे। हालमें घास पार्टीके लोगोंको इनका बड़ा सहारा था। पर यह भी अब फिसल रहे हैं। श्राद्ध मानने लगे है यज्ञमें बहुतसी बातें मानने लगे है। घास पार्टी वालोंका प्रेम इनसे कम होरहा है।

जब आर्य्यसमाज उन्नति कर रही थी हिन्दुओंही को गाली देती थी और अबभी देती है। पर जितनी गालियां अब वह आपसमें देती है उतनी हिन्दुओंको नहीं देती। अच्छी अच्छी गालियां आपसमें बांट कर बची खुची हिन्दुओंको तरफ फेंक देती है।

अधिक चोटि आपसमें घास पाटी और मास पाटीकी होती है। उनमें वह गन्दगी उछलती है कि ईश्वरही उसे रक्षा करे। सारांश यह है कि अपनी अधोगतिके पूर्ण लक्षण दिखा रही है। वह समझभी गई है कि उसे अब सफलता न होगी।

पहले जब कोई हिन्दू, मुसलमान हो जाता अथवा क्रस्तान हो जाता तो आर्य्यसमाजी उसे अपने पन्थमें लानेकी चेष्टा करते थे। परन्तु उनमें भी बहुत डरते रहते थे और बहुत सोच समझ कर काम करते थे। पर अब उनकी औरही दशा हो गई है। अब वह हिन्दुओंको दयानन्दी बनानेसे एकदम निराश हो गये हैं। इसीसे पादड़ी साहबोंकी भांति नीच जातिके तथा जातिच्युत अस्पृश्य लोगोंको अपनेमें मिलाने लगे हैं। पण्डित लेखराम एक मुसलमानको हिन्दू बनानेकी चेष्टामें जानसे गये। जालन्धरमें दयानन्दियोंने रहतिये सिक्खोंके केश कटवा कर जनेऊ पिन्हाया है और साथ खिलाया है। बहुतसे दयानन्दी लड़कियोंको जनेऊ देने लगे हैं। एक दयानन्दी लीडरने हालमें पादड़ियोंके साथ भोजन किया है क्योंकि उन पादड़ियोंने मांस खाना त्याग दिया है। इसी प्रकार दयानन्दी यह चेष्टा कर रहे हैं कि जो छूता हुआ मनुष्य किया करता है। यह सब महामण्डलहीके प्रतापसे हुआ। महामण्डल इसके लिये करोड़ों धन्यवादका पात्र है। उसने हिन्दू बालकोंको रक्षा की। पराये धर्म्ममें जानेसे उनको रोका। अपने धर्म्मका प्रभाव उनके जी में बिठाया। आर्य्यसमाज एक घुन था जो भीतरही भीतर हिन्दूधर्म्मको खाने लगा था। परन्तु भारतधर्म्म महामण्डलने ठीक समय पर उसकी सम्हाल की। घुनको अलग करके अपना अंग बचा लिया।

# दिल्लीका महोत्सव।

अब हम दिल्लीके श्रीभारतधर्म्म महामण्डलका कुछ वर्णन करके इस लेखको समाप्त करते हैं। अगष्ट सन् १९०० ई० में गत श्रावण मासके अन्त और भादोंके आरम्भमें यह एक अच्छा समारोह हो गया। सम्वत् १९५७ की यहभी एक अच्छी यादगार होगा। दिल्लीमें ऐसा धर्म्म महोत्सव बहुत कालसे नहीं हुआ। दिल्लीकी छटा उस समय देखनेके योग्य थी। श्रीमान दरभङ्गा नरेश महाराज रमेश्वरसिंहजीकी दानशीलता और सहानुभूतिसे उक्त महोत्सव हुआ था। बड़ा विशाल मण्डप बना था। पासही यज्ञशाला थी। मण्डपके पासही केम्प लगा था। बहुतसे तम्बू डेरे लगे थे। उनमें भारतवर्षके नाना स्थानोंके धर्म्म प्रेमी रईस अमीर तथा डेलीगेट लोग ठहरे थे। सैकड़ों विद्वान पण्डित पधारे थे। धर्म्मके आचार्य गुरु तथा साधु सन्यासी लोगोंका भी खूब समावेश हुआ था। काशी आदिके सब मुख्य मान्य और प्रधान पण्डित पधारे थे। स्वयं दरभङ्गा नरेश सभापति थे। अपार शोभा थी। दिल्ली निवासियोंके हृदय प्रेमभावसे उत्फुल्लित हो रहे थे। बहुत कालसे ऐसा दृश्य देखनेमें नहीं आया था। हमभी इस उत्सवमें शरीक थे। इसके देखनेका सौभाग्य हमेंभी प्राप्त हुआ था।

पांच हजार वर्ष पहले जिस इन्द्रप्रस्थमें महाराज युधिष्ठिरके राजसूययज्ञ तथा अश्वमेध यज्ञका महोत्सव हुआ था उसीमें यह भारतवर्षकी गिरी हुई अवस्थाका धर्म्म महोत्सव था। उस समयकी बात हमने देखी नहीं किन्तु इतिहासमें पढ़ी है। इस समय जो कुछ हो रहा था वह सब हमारी आंखोंके सामने था। चित्तमें अपार आनन्द था। उसी आनन्दकी तरङ्गमें भारतवर्षकी पांच

कितनीही स्त्रियां इतनी उत्तम संस्कृत बोलती थीं आजकलके पुरुष उनको समझनेकी शक्तिभी नहीं रखते। किन्तु हाय! आज महामण्डलमें देवनागरीके प्रचारार्थ रिजोल्यूशन पास होता था! अब भारतवर्षमें संस्कृत तो क्या नागरीभी अनोखी चीज बन गई इस समयका भारत विदेशी भाषाओंसे भर पूर है।

उस सभामें लीला पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं मूर्त्तिमान थे। सबके पांव धुलानेकी सेवा करते थे, इस सभामें केवल उनका नाम बाकी था। सारांश यह कि इसी प्रकार हृदयमें बहुतसे विचार उठे। चित्त कुछ घबराने लगा। परन्तु जीको सम्हाल कर विचार किया कि जो कुछ है उसी पर प्रसन्न रहना चाहिये। इतनी दशा गिर जाने परभी धर्म है और उसके नाम पर इतने सज्जन एकत्र हो गये हैं यहभी बड़े आनन्दकी बात है। आज पांच हजार वर्ष पीछेभी वही वेदमन्त्र वही देववाणी है तो सही, चाहे पोथियोंके पन्नोंहीमें हो। इतना गिरजाने पर हिन्दूधर्म है तो सही, वह लोप तो नहीं हो गया है? यह क्या कम सन्तोषकी बात है? इस गिरी दशामें भी क्या दिल्लीकी यह शोभा अपूर्व्व नहीं है?

इस सुन्दर शोभासे भरे हुए उत्सवकी केवल एकही बात और कहकर इस पुस्तकको शेष करते हैं। देश देशान्तरसे आये हुए सज्जन महामन्त्री पंडित दीनदयालुजी शर्मासे मिलनेका बड़ा उत्साह दिखा रहे थे। उनसे मिलकर नानाप्रकारके प्रश्न करते थे। पंडितजी यथावकाश उनकी बातोंका उत्तर भी देते थे। कुछ सुयोग्य उच्च अंगरेजी शिक्षा प्राप्त सनातन धर्मके प्रेमियोंने उनसे प्रश्न किया कि महाराज इन बारह सालमें श्रीभारतधर्म महामंडल से क्या नतीजा निकला और आगे आप इससे क्या फल चाहते हैं सो कहें? महामन्त्रीजी बड़ी मधुर भाषामें उत्तर दिया,—

दुर्भाग्यवश मैंने न आप सज्जनों की भांति उच्च अंगरेजी शिक्षा पाई न मैं संस्कृतका विद्वानही बना। उच्चवंशमें उत्पन्न होनेसे

चाहिये था कि मैं ऊंचे दर्जेका पंडित होता परन्तु मेरा पूर्व्व कर्म्म फल ऐसा न था। जो मुझमें सेवा करनेकी योग्यता भगवानने दी थी। इस वर्षमें जन्म लेनेके फलसे मेरा वह गुण जगा गया। मैंने पृथिवी पर किसी अमीर या रईसकी सेवा न की और धर्मकी सेवा करनेका विचार मेरे चित्तमें उत्पन्न हुआ। मैंने सोचा कि धर्म सेवासे ऊंची सेवा नहीं है। मैं केवल सेवा करसकता हूं, करताहूं और किये जाऊंगा। सेवक परिणामका जिम्मेदार नहीं हैं। फलका जिम्मेदार केवल स्वामी होता है। आप सब विद्वान और पंडित लोग मालिक हैं। मुझे आशा है कि आप मेरी इतनी सेवासे प्रसन्न होंगे। मेरी सेवासे आप फल निकालना अपना कर्त्तव्य समझलें। यदि आप फलके विषयका प्रश्न मुझसे न करके स्वयं अपनी आत्मासे करें और उसका उत्तर दायित्व अपने ऊपर लें तथा ऐसा समय मेरे जीते जी आजावे तो प्राण विसर्जनके समय मुझे अपार हर्ष होगा। आशा है कि नतीजा निकालनेका प्रश्न न करके नतीजेके उपायमें आप लगेंगे। बहुत काल तक दृढ़तासे काम करने पर बहुतसे अच्छे नतीजे स्वयं निकल आवेंगे। विद्वान पंडित तथा अगरेजी पढ़े बाबू लोग सब इस वक्तृताको सुनकर प्रसन्न हुए।

श्रीभारतधर्म्म महामण्डलके तीन नियम हैं,—

(१) वेद पुराणादि प्रतिपाद्य सनातन धर्म्मकी उन्नति करना।

(२) संस्कृत विद्याका प्रचार।

(३) रीति संशोधन।

तीनों नियम सनातन धर्म्मकी पुष्टि करनेवाले हैं। इन बारह सालमें महामण्डलने अपने इन नियमोंका बहुत अच्छा पालन किया है। महामन्त्रीजी चाहे विद्वान हों या न हों परन्तु उनकी वाचा शक्ति पर भारतवर्ष मोहित है। अच्छे अच्छे विद्वान उनकी बात सुनकर मोहजाते हैं। उनमें कोई शक्ति भी चाहे न हो परन्तु पचासों अमीर सैकड़ों विद्वानोंको मोहित करने और हजारों कोससे अपने

पास खच बुलानेकी शक्ति विलक्षण है। उसी शक्तिसे उन्होंने बिखरे हुए सनातन धर्मको जोड़कर श्रीभारतधर्म महामंडलरूपी एकही विराट स्वरूप खड़ा कर दिया। फिरसे आर्योंके हृदयमें गोब्राह्मण मातापिता स्वधर्म ईश्वर तीर्थ वर्णाश्रम धर्म पातिव्रत आदिकी श्रद्धा भक्ति उत्पन्न कर दी। संस्कृत की कितनीही पाठशालाएं जारी करादीं। देवनागरीके लिये आज ११ वर्षसे अधिक हुए मेरठकी धर्म सभामें एकत्रित होकर प्रण किया गया था कि आजकी तिथिसे सब सनातन धर्मी नागरी लिखें उर्दू अंगरेजी आदि बिना जरूरत कभी न लिखें। उसी दिनसे महामंडलमें नागरी जारी हुई। उस समय सनातन धर्मियोंमें सैकड़े पीछे दसभी भलीभांति नागरी न लिख सकते थे किन्तु आज सौ में दस भी ऐसे नहीं जो उर्दू लिखना पसन्द करते हों। प्रायः सब लोग नागरी लिखने लगे। सब नागरी लिख पढ़ सकते हैं।

इसी प्रकार उचित रीति संशोधन भी महामंडलने किया है। व्यर्थ खर्चोंको घटा दिया है। ऊपरके तीन नियम सनातन धर्मकी उन्नतिके लिये रखे गये हैं। नहीं तो श्रीभारतधर्म महामंडलके कोई नये नियम नहीं हैं। उसके वही नियम हैं जो सृष्टिके आदिसे चले आते हैं। जो हमारे शास्त्रोंमें विस्तार पूर्व्वक लिखे हैं

महामंडलने हिन्दुओंको जगा दिया है। उनको उन्नतिका मार्ग उनको दिखा दिया है। उस पथ पर चलकर अपनी पुरानी इज्जत की रक्षा करना हिन्दुओंका काम है। जिनको स्वधर्मका प्रेम है तथा उसके बने रहनेमें अपना बना रहना समझते हैं उन्हें महामंडलके नियमोंकी रक्षा करना चाहिये।

# भारतमित्र ।

हिन्दी भाषाका सबसे बड़ा सबसे पुराना और सबसे सस्ता साप्ताहिक पत्र २३ वर्षसे कलकत्तेसे निकलता है। हर सप्ताह अच्छे अच्छे सामयिक चित्र देता है। छपाई सफाई और लेख नमूना मंगाकर देखनेसे मालूम होंगे। नमूना बेदाम मिलता है। वार्षिक मूल्य केवल २) है।

## उपहार ।

१९०१ के लिये "भारतमित्र" के ग्राहकोंको केवल १) रुपया लेकर संपूर्ण श्रीमद्भागवतका हिन्दी अनुवाद दिया जावेगा। जो लोग भारतमित्रके वार्षिक मूल्य २) के साथ १) उपहारका अर्थात् ३) भेजेंगे, वह सालभर तक भारतमित्र पावेंगे और पूरा भाषा भागवत घर बैठे पावेंगे। ग्राहकगण जल्द सावधान हों अवसर चूकनेका नहीं है।



मैनेजर

"भारतमित्र"।

कलकत्ता।